प्रवचन-क्रम

1. समाजवाद क्या--सिर्फ राजनीति है!....2
2. समाजवादः दासता की एक व्यवस्था.... 17
3. पूंजीवादः ज्यादा मानवीय व्यवस्था 32
4. लोकशाही समाजवादः एक भ्रांत धारणा.... 49

पहला प्रवचन

समाजवाद क्या--सिर्फ राजनीति है!

मेरे प्रिय आत्मन्!

समाजवाद अर्थात आत्मघात! इस संबंध में कुछ कहूं, उसके पहले एक बात की देना उचित है।

समाजवाद सिर्फ राजनैतिक दृष्टि नहीं है। और अगर समाजवाद सिर्फ राजनैतिक दृष्टि होती, तो इतना खतरा भी नहीं था। समाजवाद में सिर्फ आर्थिक प्रोग्रेस ही होता तो जिंदगी की बहुत बाहर की बात भी बहुत गहरी लगती। समाजवाद समग्र जीवन-दर्शन है। समाजवाद मनुष्य के आमूल जीवन को स्पर्श करता है। और विशेष रूप से इसी कारण इसके खतरे भी बढ़े हैं।

मैं समाजवाद पर समग्र जीवन की तरह विचार करना चाहूंगा।

पहली बात, समाजवादी जीवन-दृष्टि जड़वाद की, मैटीरियलिज्म की है। और इस देश के लिए समाजवाद की जड़वादी, भौतिकवादी दृष्टि बहुत आकर्षक हो सकती है। क्योंकि हम पांच हजार वर्षों से अध्यात्मवाद से पीड़ित लोग हैं। और जब कोई समाज बहुत दिनों तक एकांगी ढंग से जीकर दुख भोग चुका होता है तो बहुत स्वाभाविक रूप से वह विपरीत अति पर, दूसरी एक्सट्रीम पर जाने की तैयारी कर लेता है। पर आदमी खाई से बचने के लिए कुएं में गिर जाता है, और कुएं से बचने के लिए खाई में गिर जाता है। बीच में खड़ा होना सदा मुश्किल है। हिंदुस्तान पांच हजार वर्षों से अध्यात्मवाद के एकांगी दृष्टिकोण से पीड़ित और परेशान है। इसलिए हिंदुस्तान का मन बहुत जल्दी जड़वाद को पकड़ ले सकता है।

साधारणतः लोग उलटा सोचते हैं। साधारणतः लोग सोचते हैं कि हिंदुस्तान में समाजवाद की अपील मुश्किल होगी। मैं नहीं सोचता हूं। लोग सोचते हैं, हिंदुस्तान आध्यात्मिक देश है, धार्मिक देश है, इसलिए समाजवादी कैसे होगा? मैं नहीं सोचता हूं, हिंदुस्तान इतने दिनों से अध्यात्मवादी है। अध्यात्मवाद के इतने दुख झेले हैं। अध्यात्मवाद के कारण बहुत सी गरीबी झेली है। अध्यात्मवाद के कारण गुलामी झेली है, अध्यात्मवाद के कारण सारा देश अलाल और शक्तिहीन हो गया है।

यह बहुत स्वाभाविक होगा इस देश के मन को कि वह किसी जड़वादी सिद्धांत की ओर आकर्षित हो जाए। यह आकर्षण स्वाभाविक होगा, लेकिन खतरनाक है। यह कुएं से बचने के लिए खाई में गिरना है। असल में एकांगी दृष्टियां सभी खतरनाक होती हैं। न तो कोई व्यक्ति शुद्ध शरीरवादी होकर जी सकता है--क्योंकि तब वह केवल शरीर रह जाता है--यंत्रमात्र! और न कोई व्यक्ति शुद्ध अध्यात्मवादी होकर जी सकता है--तब बिल्कुल शरीर को इनकार करना होता है।

इस देश ने एक प्रयोग करके देख लिया है। और उसके दुख भी देख लिए हैं। हमने प्रयोग किए हैं कि हम सिर्फ आत्माएं हैं। और जगत को हमने इनकार कर दिया और हमने कहा जगत माया है, इलुजन है, झूठ है, सत्य तो सिर्फ ब्रह्म है। इस अकेले ब्रह्म को सत्य मान कर हमने इतने दुख झेले हैं कि जिसका हिसाब नहीं, हिसाब लगाना मुश्किल है। इस देश की गरीबी, इस देश की गुलामी इस अकेले ब्रह्म को मानने के कारण ही संभव हो पाई। क्योंकि जब हमने जगत को माया कह कर इनकार कर दिया तो जगत पर हमारी पकड़ छूट गई और जब हमने जगत और पदार्थ को इनकार कर दिया तो विज्ञान हम पैदान कर पाए।

तो, पांच हजार साल से एक अति पर हम जिए हैं। जैसे घड़ी का पेंडुलम बाएं तरफ जाता है तो दाएं तरफ जाने का मोमेंटम इकट्ठा करता है। जब घड़ी का पेंडुलम बाएं जा रहा है तब आप यह मत सोचना कि वह सिर्फ जा रहा है। वह दाएं जाने की तैयारी भी इकट्ठी कर रहा है। और जितनी दूर तक बाएं जाएगा, उतनी दूर तक दाएं जाने की संभावना पैदा कर रहा है। हिंदुस्तान की घड़ी के पेंडुलम के घूमने का वक्त आ गया है। और अब खतरा है कि हम दूसरी अति पर चले जाएं। अब खतरा है कि हम मान सकें कि परमात्मा नहीं है, आत्मा नहीं है, बस आदमी शरीर है। और रोटी मिल जाए तो सब मिल जाता है।

समाजवाद एक जड़वादी जीवन-दृष्टि है, जो मनुष्य में दिखाई पड़ता है उसके पार न दिखाई पड़ने वाले को इनकार करती है। और ध्यान रहे जिस दिन भी मनुष्य के भीतर जो अदृश्य है उसको इनकार करने को राजी हो जाएंगे, उस दिन मनुष्य के पास कुछ भी नहीं बच रहेगा, सिर्फ रूप-रेखा बच जाएगी।

मनुष्य में जो भी श्रेष्ठ है वह सब अदृश्य है और मनुष्य में जो भी सुगम है वह सब अदृश्य है। और मनुष्य में जो भी चेतना है वह सब अदृश्य है। मनुष्य में जो दृश्य दिखाई पड़ रहा है वह केवल यंत्र है। और यंत्र के भीतर बैठा हुआ मालिक उसका उपभोक्ता, इस घर का निवासी बिल्कुल अदृश्य है। और हम खतरनाक लोग हैं, क्योंकि जब हम दृश्य को झूठ कह कर इनकार कर सके थे तो अदृश्य को झूठ कह कर इनकार करने में कितनी देर लगेगी? जब हम दिखाई पड़ने वाले जगत को माया कह सके तो न दिखाई पड़ने वाले परमात्मा को माया कहने में कितनी देर लगेगी?

जो सामने टकराता था, जिसको सारी जिंदगी कहती थी--"है", उसको हम पांच हजार साल से कहते थे, यह सिर्फ आभास है, यह वस्तुतः नहीं--सिर्फ सपना है। तो जो बिल्कुल सपने जैसा है, जो दिखाई भी नहीं पड़ता, जिसे प्रयोगशाला में जांचा भी नहीं जा सकता, जिसे टेस्ट-ट्यूब में परखने का कोई उपाय नहीं, और जो जिंदगी में कहीं भी टकराता नहीं, उसके इनकार में हमें कुछ देर लग सकती है!

इसलिए मैं यह कह देना चाहता हूं कि भारत जिस बुरी तरह से जड़वादी हो सकता है, उतना जड़वादी होने की संभावना दुनिया में किसी भी कौम को नहीं है। क्योंकि भारत ने जिस पागलपन से अध्यात्म को साधा है, दूसरी एक्स्ट्रीम पर जाने की गति उसने इकट्ठी कर ली है।

और इस समय अध्यात्म के विरोध में जो सबसे बड़ा विचार है वह समाजवाद का है। इस समय धर्म के विरोध में जो सबसे बड़ी फिलासफी है वह समाजवाद की है। अगर काशी को मिटाना है और काबा को मिटाना है तो मास्को के सिवाय कोई विकल्प दिखाई नहीं पड़ता। और अगर गीता और कुरान को जला डालना है तो "कैपिटल" के सिवाय पूजागृह में रखने को और कोई किताब नहीं मालूम पड़ती।

भारत के लिए समाजवाद आत्मघात सिद्ध होगा, क्योंकि भारत वैसे ही आधा मर चुका है। और आधा जो बचा है वह दूसरे विकल्प को चुन कर मर सकता है। हमने आधी जिंदगी को पहले ही इनकार कर दिया था और आधी जिंदगी को इनकार करके हमने, भूत-प्रेतों की जिंदगी स्वीकार कर ली थी--सिर्फ निराकार की, आकार को इनकार करके। अब हम दूसरा खतरा कर सकते हैं। अब हम ऊब गए हैं, हम बुरी तरह ऊब गए हैं। और जो-जो हमने जिंदगी में आधार बनाए थे वह आधार धोखा दे गए हैं, उन्होंने कुछ साथ नहीं दिया। अब हम उनसे विपरीत आधार पकड़ने के लिए बहुत ही आतुर हैं। महावीर, बुद्ध, राम और कृष्ण के बेटे, मार्क्स, एंजिल और माओ को पकड़ने के लिए जितने तैयार हैं उतने जगत में कोई भी तैयार नहीं हैं। थोड़ी बहुत देर लग सकती है, लेकिन तैयारी रोज-रोज प्रकट होती जाती है।

लेनिन ने आज से कोई साठ साल पहले की अपनी एक घोषणा में कहा था कि कम्युनिज्म की यात्रा मास्को से पेकिंग और पेकिंग से कलकत्ता होती हुई लंदन जाएगी। उसकी और बातें चाहे गलत हों, उसकी कम से कम यह खतरनाक घोषणा सही होती मालूम पड़ती है।

पेकिंग तक तो बात सही हो गई। कलकत्ते में भी काफी पगध्वनियां सुनाई पड़ती है। बंबई भी ज्यादा दिन दूर नहीं रह सकता।

हिंदुस्तान की बड़ी संभावना है। इसलिए पहले इस बात को ठीक से सोच लेना चाहिए कि जड़वाद की दृष्टि का अर्थ क्या है? मैटीरियलिस्ट दृष्टि का क्या अर्थ है? भौतिकवाद का क्या अर्थ है?

भौतिकवाद का अर्थ है कि हम सिर्फ मनुष्य के शरीर होने को स्वीकृति देते हैं। शरीर के पार मनुष्य का कुछ नहीं है। इसलिए स्टैलिन लाखों लोगों की हत्या कर सका। क्योंकि अगर "आदमी" सिर्फ होता है तो हत्या में कोई भी हर्ज नहीं है। और अगर आदमी सिर्फ यंत्र है तो मारने में परेशानी क्या है? और आदमी अगर सिर्फ शरीर है और आत्मा नहीं है तो स्वतंत्रता की क्या जरूरत है?

समाजवाद अंततः स्वतंत्रता की हत्या बन जाता है। क्योंकि समाजवाद मौलिक रूप से आदमी की आदमियत को इनकार कर देता है। वह स्वीकार करता है सिर्फ शरीर को, फिर शरीर के लिए रोटी चाहिए वह समाज दे सकता है। कपड़े चाहिए, वह भी दे सकता है। मकान चाहिए, वह भी दे सकता है।

आत्मा बेच कर कपड़े, मकान और रोटी को पा लेना बहुत महंगा सौदा है। लेकिन आदमी ऐसे सौदे करने को राजी हो सकता है। और इमरजेंसी होती है, संकट के काल होते हैं, जैसा भारत पर आज है। आज भारत के पास रोटी नहीं है। आज भारत के पास कपड़े भी नहीं हैं। आज भारत के पास मकान भी नहीं हैं। इस परेशानी की हालत में हम इस सौदे के लिए राजी हो सकते हैं कि हम आदमी की स्वतंत्रता को बेच कर, और रोटी कपड़े को खरीद लें। एक बार खरीद लेने के बाद पता चलेगा कि यह दुकान फिर वापस लौटाने वाली नहीं है। वे चीजें वापस लौटाई नहीं जा सकतीं, इनको लौटाना फिर असंभव है।

सोवियत रूस में जिन लोगों ने क्रांति की थी वे सोचते थे कि हम स्वतंत्रता के लिए क्रांति कर रहे हैं। लेकिन सोवियत रूस की पच्चीसवीं वर्षगांठ पर क्रांति करने वाले बड़े नेताओं में सिर्फ एक स्टैलिन बचा था, बाकी सबकी हत्या स्टैलिन ने ही करवा दी। चाहे जियोविएव हों, चाहे कामेनिएव हों और चाहे स्वर्दलाव हों और ट्राटस्की हों, क्रांति के जितने भी महत्वपूर्ण आधार थे उन सबकी हत्या क्रांति ने ही कर दी। खतरा है क्रांतिकारियों से, क्योंकि वे लोग स्वतंत्रता की बातें करते थे, उनको मिटा देना पहले जरूरी था। उनको मिटा देने के बाद जमीन पर सबसे बड़े कारागृह का निर्माण हुआ।

आशा थी कि सबसे बड़ी स्वतंत्रता का निर्माण होगा, लेकिन जो निर्मित हुआ वह सबसे बड़ा कारागृह है। इतना बड़ा कारागृह कहीं भी कभी भी निर्मित नहीं हुआ। न चंगेज खां कर सका था, न नेपोलियन कर सका था, न सिकंदर कर सका था। दुनिया के बड़े से बड़े खतरनाक लोग भी इतना बड़ा कारागृह नहीं पैदा कर सकते थे। समाजवाद ने वह कारागृह संभव कर दिया, क्योंकि चंगेज कितना ही बड़ा हत्यारा हो, आदमी की आत्मा का भरोसा था उसे। और चंगेज कितना ही बड़ा हत्यारा हो, सुबह बैठ कर परमात्मा से क्षमा मांगता था।

स्टैलिन पहला हत्यारा है जिसे किसी से क्षमा मांगने की कोई जरूरत नहीं है, क्योंकि आत्मा है ही नहीं। स्टैलिन पहला आदमी है इस मनुष्य-जाति के इतिहास में जो अंदाजन पचास लाख लोगों से लेकर एक करोड़ लोगों की हत्या इतनी सरलता से कर सका, जैसे हम मिट्टी के गुड्डे-गुड्डियों की हत्याएं कर रहे हों। इस हत्या में कहीं कोई मर ही न रहा था। आदमी है ही नहीं मरने को, सिर्फ एक यंत्र है। और आप अगर एक यंत्र को तोड़ दें

तो इसके लिए अपराध का भाव पैदा नहीं होता। अगर मैं घड़ी को पटक कर तोड़ दूं तो मेरे मन में ऐसा भाव नहीं होता कि कोई प्रायश्चित करूं। घड़ी सिर्फ यंत्र है।

मार्क्स की दृष्टि में मनुष्य पदार्थ ही है और समस्त चेतना पदार्थ का ही एपिफिनॉमिना है। सिर्फ पदार्थ में ही पैदा हो गई घटना है। जैसे हम आक्सीजन और हाइड्रोजन को मिलाएं और पानी पैदा हो जाए। तो पानी कोई नई घटना नहीं है, आक्सीजन और हायड्रोजन का जोड़ है। इसलिए पानी के साथ कोई अलग व्यवहार करने की जरूरत नहीं है। जो हम आक्सीजन और हाइड्रोजन के साथ करते थे, वही व्यवहार पानी के साथ किया जा सकता है।

आदमी भी भौतिक तत्वों का जोड़ है, और उस जोड़ के अतिरिक्त उसके भीतर और कुछ भी नहीं है जो जोड़ के बाहर हो। एक बार यह बात अगर स्वीकृत हो जाए कि आदमी सिर्फ जोड़ है हड्डी-मांस-मज्जा और पुदगलों का और उसके भीतर जोड़ के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है तो जिंदगी फिर दूसरे ढंग से हमको बितानी पड़ेगी।

जब कि यह सरासर झूठ है, आदमी कुछ और है, सिर्फ जोड़ नहीं--जब कि यह बात बुनियादी रूप से गलत है। सच तो यह है कि आदमी कुछ और है और उसके आधार पर ही यह जोड़ भी संभव हो पाया है। और जिस दिन वह और अलग हो जाता है, यह जोड़ बिखर जाता है। यह जोड़ अपने आप में नहीं है। वह क्रिस्टलाइजेशन, यह सारी चीजों का जुड़ जाना बीच में किसी और केंद्र के ऊपर है। और वह केंद्र जिस दिन अलग होता है, यह सारा का सारा विस्तार टूट कर बिखर जाता है।

आदमी जोड़ नहीं--जोड़ से ज्यादा है, लेकिन समाजवाद की दृष्टि जो है--मार्क्स सोचता था कि पदार्थ के अतिरिक्त और कोई सच्चाई नहीं है जगत में। जिन दिनों में मार्क्स पैदा हुआ, उन दिनों पदार्थवाद बहुत जोर पर था। लेकिन अब अगर मार्क्स को उसकी कब्र से उठाया जा सके तो वह बहुत हैरान होगा। क्योंकि इधर सौ वर्षों में जो सबसे बड़ा आघात हुआ है वह पदार्थ को हुआ है। आज कोई भी वैज्ञानिक यह नहीं कह सकता कि पदार्थ है।

आज वैज्ञानिक कहेगा कि मैटर इज डेड। पदार्थ तो है ही नहीं, मर गया। असल में जितना खोजा उतना ही पाया कि पदार्थ नहीं है। आज अगर सारी दुनिया के पदार्थवादी लौटें तो बहुत हैरान होंगे। वे इस बात से हैरान होंगे कि उन्होंने आशा बांधी थी कि विज्ञान एक दिन सिद्ध करेगा कि परमात्मा नहीं है, आत्मा नहीं है। विज्ञान यह तो सिद्‍ध नहीं कर पाया कि आत्मा नहीं है, न यह सिद्ध कर पाया कि परमात्मा नहीं है। एक अजीब बात विज्ञान सिद्ध कर पाया कि पदार्थ नहीं है। और जैसे हम पदार्थ को तोड़ते हैं और नीचे पहुंचते हैं तो सिवाय... विद्युत-कणों को भी कण कहना भाषा की भूल है! कण नहीं हैं वे, क्योंकि कण तो पदार्थ के छोटे टुकड़े को कहते हैं। विद्युत के टुकड़े को क्या कहें? अंग्रेजी में उन्होंने एक नया शब्द गढ़ा है--क्वांटा का मतलब होता है, दोनों चीजें एक साथ--कण भी और लहर भी। कण-तरंग दोनों बातें एक साथ हो नहीं सकतीं। लहर का मतलब ही होता है जिसमें बहुत कण हैं। कण का मतलब है, जो अकेला है, जिसमें कोई लंबाई नहीं है। लेकिन वैज्ञानिक कहते हैं, वह जो विद्युत का आखिरी टुकड़ा है वह एक ही साथ कण भी है और तरंग भी है। सब्स्टेंशियल बिल्कुल ही नहीं है। उसमें सब्स्टेंस जैसी कोई चीज ही नहीं--सिर्फ ऊर्जा है, सिर्फ शक्ति है।

सिर्फ शक्ति है पदार्थ। और मार्क्स इनकार करता है कि मनुष्य के भीतर पदार्थ के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। और विज्ञान कह रहा है कि सिर्फ शक्ति है, पदार्थ तो है ही नहीं। आज दुनिया में मेटीरियलिज्म की तो बेस गिर गई है, उसके नीचे की बुनियाद गिर गई है। आज मेटीरियलिस्ट होने के लिए कोई भी समझदार

आदमी तैयार नही है, नहीं हो सकता है। हालांकि पुरानी सदियों में अधिकतम समझदार आदमी मैटीरियलिस्ट होने के लिए तैयार था। क्योंकि दिखलाई पड़ता था, यह लोहा है, यह लकड़ी है, यह दीवाल है। आज वैज्ञानिक कहता है कि न दीवाल है, न लोहा है, न लकड़ी है, विद्युत की तरंग में कोई मैटर नहीं, कोई पदार्थ नहीं है, वह सिर्फ शक्ति है।

यह सारा जगत ऊर्जा का खेल है। यह सारा जगत शक्ति का एक बहुत बड़ा व्यापक विस्तार है। जिसे धर्म ने कहा है ब्रह्म, उसे विज्ञान आज ऊर्जा कह रहा है। बहुत देर नहीं है कि वह उसे ब्रह्म कह सके। एक कदम और उठाने की जरूरत है और विज्ञानन जिसे ऊर्जा कह रहा है, उसे सचेतन ऊर्जा कह सकेगा। क्यों? क्योंकि विज्ञान के ही आधारभूत नियम इस बात के लिए पूर्व से अपेक्षा तैयार कर रहे हैं।

क्योंकि जगत सिर्फ शक्ति का विस्तार है तो इस शक्ति का विस्तार में विचार पैदा होता है, चेतना पैदा होती है, और वही पैदा होता है। हो सकता है जो पहले से छिपा हो, अन्यथा पैदा नहीं हो सकता। एक बीज से वृक्ष पैदा होता है, भले बीज में वृक्ष दिखाई नहीं पड़ता, लेकिन बीज में वृक्ष का पूरा बिल्ट इन प्रोग्रेम मौजूद है। बीज मं कैसे फल लगेंगे और वृक्ष कितना बड़ा होगा, और वृक्ष में कैसी शाखाएं होंगी--यह सब उस बीज में छिपा है। सिर्फ प्रकट होने की देर है, अप्रकट है।

ऊर्जा अप्रकट चेतना है, और बीज अप्रकट वृक्ष है। अगर कोई कहे कि बीज में वृक्ष नहीं है, तो फिर वृक्ष के पैदा होने की कोई संभावना ही नहीं है। फिर हर बीज हर वृक्ष को पैदा नहीं करता, सब बीज अलग-अलग वृक्षों को पैद करते हैं, और फिर यदि बीज में वृक्ष नहीं है, तो फिर हम एक कंकड़ का बो दें और आम का वृक्ष पैदा नहीं होगा। क्योंकि कंकड़ में जो नहीं छिपा है वह पैदा नहीं हो सकता।

जो बोया है वही प्रकट होता है। चेतना प्रकट हुई है तो चेतना इसी ऊर्जा में छिपी होनी चाहिए। इस ऊर्जा के विस्तार में अगर ऊर्जा न छिपी हो तो वह कहां से आएगी--वह है। मैं आपको देख रहा हूं, आप मुझे सुन रहे हैं, मैं बोल रहा हूं, आप समझ रहे हैं कि यह घटना घट रही है। यह घटना है समझ की, अंडरस्टैंडिंग की, विचार की, चेतना की। प्रेम की यह घटना ऊर्जा में अंतर्निहित है।

विज्ञान को एक कदम और उठाना है। पदार्थ को विज्ञान ने जब तक नहीं तोड़ा था, तब तक वैज्ञानिक कहते थे पदार्थ ही सत्य है। उसका ही जोड़ है सब, फिर उन्होंने पदार्थ को तोड़ा, उसको एनालाइज्ड किया। एनालिसिस के बाद हैरान हो गए। उन्होंने पाया कि पदार्थ तो तिरोहित हो गया, रह गई सिर्फ ऊर्जा। जिस दिन वह ऊर्जा भी तिरोहित हो गई तो रह गई सिर्फ चेतना।

विज्ञान ने एक कदम जो उठाया है वह धर्म की तरफ से है और अब भविष्य में भौतिकवाद के लिए कोई उपाय नहीं रह गया है। लेकिन मार्क्स जब पैदा हुआ तब भौतिकवाद हवा में था। चारों तरफ डारविन और न्यूटन की बात थी और चर्चा थी। और सब तरफ भौतिकवादी जीतता हुआ मालूम पड़ता था और अध्यात्मवादी हारता हुआ मालूम पड़ता था। स्वभावतः मार्क्स ने भौतिकवाद को पकड़ लिया। लेकिन समाजवाद आज भी भौतिकवाद को पकड़े हुए बैठा है। असल में सब वादी अतीत से जकड़ जाते हैं। कोई वादी गीता से जकड़ जाता है, कोई कुरान से, कोई बाइबिल से, कोई मार्क्स से जकड़ जाता है। असल में वादी जो है वह पीछे को पकड़े रह जाता है। उसे पता नहीं रहता, जिंदगी आगे बढ़ गई।

समाजवाद आउट ऑफ डेट है, पिछड़ी हुई बकवास है। उसका अब कोई भविष्य नहीं है। क्योंकि यह जिन आधारों पर खड़ा है वे सब आधार गिर गए हैं। पहला आधार तो यह गिर गया है कि मैटीरियलिज्म गलत सिद्ध हो गया है।

मैं यह नहीं कह रहा हूं कि अभी स्प्रिचुअलिज्म सही सिद्ध हो गया है, विज्ञान से। मैं सिर्फ यही कह रहा हूं कि सिर्फ पदार्थवाद गलत सिद्ध हो गया है। लेकिन जगह खाली हो गई है। और मनुष्य की चेतना बहुत दिनों तक वेक्यूम को बरदाश्त नहीं करती। असल में शून्य को बरदाश्त करना कठिन है। इसलिए पिछले बीस वर्षों में वैज्ञानिकों का बड़ा वर्ग धीरे-धीरे अध्यात्म की तरफ गया। एडिंगटन ने अपनी आत्म-कथा में लिखा है कि जितना ही मैं सोचता हूं, उतना ही मुझे ऐसा मालूम पड़ा है कि जगत एक वस्तु कम और विचार ज्यादा है।

यह जगत एक वस्तु की भांति कम और एक विचार की भांति ज्यादा है।

एडिंगटन जैसा वैज्ञानिक यह कहता है तो थोड़ी हैरानी होती है। जिम्स जीन ने मरने के पहले एक वक्तव्य दिया और उस वक्तव्य में कहा कि जितना मैंने सोचा, मैंने पाया कि रहस्य बड़ा होता जाता है। और एक किताब लिखी।

एक वैज्ञानिक मिस्टरी शब्द का भी उपयोग करेगा, यह भी थोड़ा ठीक नहीं मालूम होता।

मिस्टरी धार्मिक शब्द है--रहस्य। संत होते हैं रहस्यवादी, वैज्ञानिक रहस्यवादी नहीं होता। वैज्ञानिक कहता ही यह है कि कोई रहस्य नहीं है। सब रहस्य खोले जा सकते हैं। सिर्फ हमारी समझ की कमी है। थोड़ी समझ बढ़ेगी तो जो रहस्य मालूम पड़ता है उसे हम कानून बना देंगे।

हम खोल देंगे सब और इस सदी के पहले, इस सदी के प्रारंभ होते वक्त वैज्ञानिक बहुत आशा से भरा था कि हम सारे रहस्य खोल लेंगे। यह सदी पूरी होते-होते इस दुनिया में कोई रहस्य नहीं बचेगा और विज्ञान रिटायर हो जाएगा। वह विश्राम पर चला जाएगा, क्योंकि कोई रहस्य नहीं बचेगा, सब रहस्य खोल लिए जाएंगे।

जिन लोगों ने फ्रेंच-क्रांति की थी वे लोग इसी आशा से भरे थे कि दुनिया में ज्यादा दिन रहस्य नहीं बचेगा। लेकिन उन बेचारों को कोई पता नहीं है कि विज्ञान ने कितनी खोज की, रहस्य छोटा नहीं हुआ, रहस्य और बड़ा हो गया। और विज्ञान जितना गहरा गया उतना पाया कि गहराइयां आगे हैं। और विज्ञान ने जहां-जहां समझा था कि सतह आएगी वहां पहुंच कर पाया कि यह तो सिर्फ ऊपर ही हम तैरते थे, नीचे और बहुत ज्यादा है। और अब जिम्स जीन वैज्ञानिक कह सकता है कि जगत की मिस्टरी का कभी कोई अंत नहीं है।

आइंस्टीन ने अपने जीवन भर के निष्कर्षों के बाद में कहा है कि मेरा मन धार्मिक होता जा रहा है। यह बड़ी हैरानी की बात है। आइंस्टीन जैसा आदमी कहे, मेरा मन धार्मिक होता जा रहा है! क्यों होता जा रहा है? आइंस्टीन को ऐसी कौन सी वैज्ञानिक समझ से पता चला है कि धर्म है। नहीं, यह तो पता नहीं चला, लेकिन एक बात पक्की पता चल गई कि विज्ञान के सब आधार डांवाडोल हो गए हैं। और अब विज्ञान को पकड़ने के लिए जगह नहीं रह गई। हाथ खाली हो गए हैं। और आइंस्टीन के हाथ जो खाली हैं, वह धर्म की तरफ झुक रहे हैं।

समाजवाद का बुनियादी आधार अब भौतिकवाद है। इस भौतिकवाद से समाजवाद का एक दूसरा आधार विकसित हो गया था--वह था हिस्टारिकल मैटीरियलिज्म। वह मैटीरियलिज्म का ही विकास था।

भौतिकवाद और फिर मार्क्स ने एक दूसरी धारणा विकसित की--ऐतिहासिक भाग्यवाद की। समाजवाद का यह मानना है कि आदमी तय नहीं करता कि समाज कैसा हो। समाज की अंधी ऐतिहासिकता (हिस्टोरिकी) तय करती है कि समाज कैसा हो!

पूंजीवाद के बाद समाजवाद आएगा ही, यह अनिवार्य है। यह ऐसे ही है जैसे हम पानी को गरम करेंगे तो वह भाप बनेगा--बनेगा ही। ऐसा नहीं है कुछ कि उसे बनना चाहिए।

इसलिए मैं दूसरी बात आपसे कहना चाहता हूं। जिस भौतिकवाद के आधार पर मार्क्स सोचता था कि ऐतिहासिक सुनिश्चितता हो सकती है... कि भौतिकवाद तो गिर ही गया! भौतिकवाद के सुनिश्चतता के सिद्धांत भी गिर गए। पिछले पंद्रह सालों में भौतिकवाद ने नया सिद्धांत विकसित किया है, जिसका नाम है, प्रोबेबिलिटी--संभावना। पिछले पंद्रह वर्षों में विज्ञान ने सरटेंटी की भाषा छोड़ कर अनसरटेंटी की भाषा बोलना शुरू की है। अब निश्चय की भाषा विज्ञान ने बंद कर दी और अनिश्चय की भाषा शुरू की है। क्योंकि विज्ञान यह कह रहा है कि जो निश्चय दिखाई पड़ रहा है वह बहुत ऊपरी है, और हम भीतर घुसते हैं तो निश्चय टूट जाता है।

जैसे हम निश्चित हो सकते हैं कि पिछले दस सालों का अहमदाबाद की सड़कों का रिकार्ड पुलिस से पूछा जाए तो पता चल सकता है, कितने एक्सीडेंट हुए। और यह भी पता चल सकता है कि हर साल कितने एक्सीडेंट बढ़ जाते हैं। तो हम घोषणा कर सकते हैं कि अगले साल अहमदाबाद की सड़कों पर कितने एक्सीडेंट होंगे। लेकिन इस आधार पर हम यह नहीं बता सकते कि कौन सा आदमी एक्सीडेंट में मरेगा।

दस लाख आदमी रहते हैं तो हम बता सकते हैं कि दस आदमी अगले साल कार के एक्सीडेंट में मरेंगे। क्योंकि पिछले साल नौ मरे, उसके पहले साल आठ और पहले सात मरे। दस आदमी मरेंगे यह प्रोबेबिलिटी है, यह सरटेंटी नहीं है। यह सिर्फ संभावना है। यदि अहमदाबाद के लोग तय कर लें, जैसा कि बहुत संभव है गुजरात के लोग कर सकते हैं--मरेंगे, तो तब तक हम घर से बाहर ही नहीं निकलेंगे तो यह संभावना गलत हो जाएगी। दस भी न मरेंगे। यह संभावना तभी तक लागू रहेगी जब तक अहमदाबाद के लोग जिस ढंग से रह रहे हैं वे वैसे ही रहते चले जाएं। और यह संभावना बड़े समूह पर लागू होगी। अगर एक

आदमी को पकड़ कर हम कहें कि यह आदमी मरेगा या नहीं मरेगा, तो उसके संबंध में कोई घोषणा नहीं की जा सकती।

जब तक विज्ञान पदार्थ के समूह का अध्ययन कर रहा था, तब तक बहुत सरटेन था। वह जानता था कि नाइट्रोजन का व्यवहार क्या है, वह जानता था कि आक्सीजन का व्यवहार क्या है। लेकिन जब विज्ञान पदार्थ के समूह के नीचे उतरा और उसने एटम को पकड़ा तो वह हैरान रह गया, एटम इंडीविजुअल है। उसके व्यवहार को पक्के रूप से तय नहीं किया जा सकता है कि वह क्या व्यवहार करेगा।

बड़ी हैरानी की बात है कि पदार्थ के भीतर भी व्यक्तियों के अस्तित्व हैं। और जब एटम को भी तोड़ा तब वैज्ञानिक और भी मुश्किल में पड़ गए हैं, क्योंकि इलेक्ट्रान, न्यूट्रान और पाजेट्रान के व्यवहार को तो बिल्कुल नहीं बताया जा सकता कि वे क्या करेंगे। वे झिग-झिग चलते हैं। उनका कुछ पक्का नहीं कि वे ऐसा ही चलेंगे। वे गलत चल सकते हैं, और कुछ पता नहीं चलता कि वे ऐसी गड़बड़ क्यों करते हैं? क्योंकि पदार्थ को गड़बड़ नहीं करना चाहिए, उसे नियम से चलना चाहिए।

यहां तक हैरानी का अनुभव हुआ है कि जब कोई वैज्ञानिक अपनी बहुत गहरी दूरबीन से या खुर्दबीन से पदार्थ के छोटे अणुओं को देखता है तो एक बहुत आश्चर्यजनक अनुभव होता है। वह समझने जैसा है। वह यह कि उस निरीक्षण करने से पदार्थ के छोटे अणुओं के व्यवहार में अंतर पड़ जाता है। जैसे कि आप अपने बाथरूम में स्नान करते होते हैं तो एक तरह के आदमी होते हैं और मैं आपको सुराख में से झांक कर देखूं तो आपके व्यवहार मे अंतर पड़ जाता है। क्योंकि जब आप अकेले थे ता आप मुंह चिढ़ा रहे थे आईने के सामने, लेकिन अगर आपको पता चल जाए कि छेद में से कोई झांक रहा हे, तो आप बदल गए। यह आपके बाबत तो समझ में आता है,

क्योंकि आप एक व्यक्ति हैं सचेतन, लेकिन एक छोटा सा न दिखाई पड़ने वाला इलेक्ट्रान अगर निरीक्षण से अपना रास्ता बदल देता है, तब बड़ी अजीब बात है।

इसका मतलब यह होता है कि इलेक्ट्रान के पास अपनी आत्मा, अपना व्यक्तित्व है। इलेक्ट्रान भी निरीक्षण से रास्ता बदलता है। आपने कभी अपनी नाड़ी नापी है, आप अपनी नाड़ी नापें, पहली दफा नापें, फिर दस मिनट के लिए निरीक्षण करते रहें नाड़ी का और फिर नापें, आप पाएंगे कि चाल बढ़ गई। जब डाक्टर आपकी नाड़ी नापता है तो चाल उतनी ही नहीं होती जितनी नापने के पहले थी, थोड़ी सी बढ़ जाती है और अगर लेडी डाक्टर हा तो निश्चित ही ज्यादा बढ़ जाती है। क्योंकि लेडी डाक्टर की वजह से नाड़ी पर निरीक्षण ज्यादा हो जाता है, ध्यान ज्यादा चला जाता है।

निरीक्षण चेतन व्यक्ति में फर्क करे--यह समझ में आता है, लेकिन जिसको हम सदा से जड़ कहते रहे--अचेतन, उसके व्यक्तित्व में भेद पड़ जाए तो सोचना पड़ेगा फिर से कि जिसको हम अचेतन कह रहे हैं, वह भी अचेतन नहीं है। ऑब्जर्वेशन फर्क करता है तो चेतना वहां भी है, तो हो सकता है हम उसकी चेतना को अभी नहीं पहचान पा रहे, लेकिन कल हम उसके चेतन को पहचान लें।

इसलिए विज्ञान पिछले पंद्रह सालों से सरटेंटी की बातें नहीं करता कि ऐसा होगा ही, वह कहता है, ऐसा हो सकता है। क्योंकि वे जो नीचे बैठे हुए व्यक्तिगत अणु हैं वे क्या व्यवहार करेंगे, कहना बहुत कठिन है। उनके व्यवहार को तय करना आसान नहीं है। भीड़ सदा जड़ होती है, व्यक्ति सदा चेतन होता है। और समाजवाद का सारा भरोसा भीड़ पर है। व्यक्ति पर बिल्कुल नहीं है।

व्यक्ति पर कोई जड़ता भरोसा नहीं कर सकती। व्यक्ति स्वतंत्रता है। भीड़ एक जड़ता है। अगर एक मस्जिद को जलाना हो तो पांच हजार हिंदुओं पर भरोसा किया जा सकता है, एक हिंदू पर भरोसा नहीं किया जा सकता। अगर एक मंदिर मे आग लगाना हो तो पांच हजार मुसलमानों पर भरोसा किया जा सकता है, एक मुसलमान पर भरोसा नहीं किया जा सकता। और मजा यह है कि पांच हजार मुसलमान से अगर एक-एक से पूछा जाए कि क्या तुम मंदिर जलाने के लिए तैयार हो तो वह भी दो बार सोचेगा और कहेगा कि जलाना कि नहीं जलाना; लेकिन पांच हजार मुसलमानों की या पांच हजार हिंदुओं की भीड़ जब मंदिर या मस्जिद में आग लगाती है, तो सोचने की जरूरत ही नहीं होती। भीड़ सिर्फ यंत्रवत काम करती है।

इसलिए दुनिया में जितने बड़े पाप व्यक्तियों ने किए हैं उतने व्यक्ति ने कभी भी नहीं किए और भीड़ से सावधान रहना और भीड़ से बचने की कोशिश करना।

समाजवाद भीड़वाद है, वह व्यक्ति को हटा कर भीड़ को ला देना चाहता है। विज्ञान के नीचे से आधार खिसक गए हैं। इसलिए अब कोई समाजवादी वैज्ञानिक समाजवाद की बातें न करे। मार्क्स के जमाने में साइंटिफिक सोशलिज्म शब्द में कोई अर्थ था, अब कोई अर्थ नहीं है। अब अगर हमारा चिंतन वैज्ञानिक है, तो वह गलत बातें कर रहा है। विज्ञान से आज उसको कोई सहारा या समर्थन नहीं है।

यह जान कर आप हैरान होंगे कि जब तक स्टैलिन रूस में हुकूमत में था तब तक उसने ऐसी आज्ञाएं जारी कर रखी थीं कि वैज्ञानिक कोई ऐसा सिद्धांत न खोजें जो समाजवाद के विपरीत जाता हो। बहुत मजे की बात है। राजनीति तय करेगी कि प्रकृति कैसा व्यवहार करे, राजनीति तय करेगी कि हाइड्रोजन और आक्सीजन मिले तो पानी बने, कि न बने। स्टैलिन क्रेमलिन में बैठ कर तय करेगा कि फिजिक्स क्या खोजे और क्या न खोजे और खोज ले, तो भी क्या बताए और क्या न बताए।

स्टैलिन ने पिछले पचास साल रूस में ऐसी सारी दिशाओं को बंद करवा दिया जिनसे समाजवाद की वैज्ञानिकता पर संदेह हो सकता था। लेकिन कोई रूस में ही विज्ञान विकसित नहीं हो रहा है, सारी यूरोपीय दुनिया में विज्ञान का विकास एक अजीब निष्कर्ष देता है। और वह यह कि जगत एक सचेतन प्रक्रिया (कांशस प्रोसेस) है। और ध्यान रहे कि यह कभी भी भाग्यवादी नहीं हो सकती।

हिंदुस्तान के लिए समाजवाद के साथ यह भी एक खतरा है जो मैं आपको बता दूं। हिंदुस्तान हजारों सालों से भाग्यवादी है। उतने भाग्यवादी न मनु हुए, न भाग्यवादी याज्ञवल्क्य थे। कोई हिंदू विचार इतना भाग्यवादी नहीं था, जितना भाग्यवादी मार्क्स है। क्यों? क्योंकि स्वतंत्रता की संभावना चेतना के साथ है। अगर चेतना नहीं है तो स्वतंत्रता नहीं है, स्वतंत्रता नहीं है तो फिर यांत्रिक व्यवस्था सब निर्णय करती है। घड़ी तय नहीं कर सकती कि मैं चलूं या न चलूं। घड़ी का यंत्र तय करता है कि चले या न चले। इसलिए हम घड़ी की गारंटी दे सकते हैं कि दस साल चलेगी। क्योंकि घड़ी कोई आत्महत्यसा नहीं करेगी, लेकिन आप मेरी गारंटी नहीं दे सकते कि दस साल चलूंगा। मैं आज ही आत्महत्या कर सकता हूं।

सारा यंत्र पड़ा रहेगा ठीक जो दस साल चल सकता था, लेकिन मैं आज आत्महत्या कर सकता हूं। आदमी अकेला प्राणी है जो आत्महत्या कर सकता है। यह कभी आपने सोचा, कोई जानवर नहीं कर सकता। अब तक किसी जानवर ने आत्महत्या नहीं की। क्यों? जानवर के पास इतनी चेतना नहीं कि स्वयं का निर्णायक हो सके कि मैं जीऊं या मरू। मनुष्य के मन का हमें पता नहीं है। मनुष्य की चेतना बहुत छोटे से घेरे को प्रकाशित करती है। जैसे एक दीया जलता है तो छोटे से घेरे को प्रकाशित करता है। ऐसे ही मनुष्य की चेतना छोटे से घेरे को प्रकाशित करती है। अगर मेरी पत्नी बीमार है, तो मैं रात भर दौड़ सकता हूं; लेकिन मुझे पता लगे कि राष्ट्र-पत्नी बीमार है, तो हम आराम से सो जाएंगे कि रहने दो, इससे क्या फर्क पड़ता है। अगर मेरी मां बीमार है तो मैं जिंदगी भर उसकी सेवा कर सकता हूं, लेकिन मुझे पता चले कि मनुष्यता की मां बीमार है, होगी बीमार! भारत माता के बीमार होने से कोई प्रभाव नहीं पड़ता। अपनी मां बीमार होनी चाहिए।

मनुष्य की चेतना का बहुत छोटा सा पहलू वही परिवार है। रूस ने नहीं मानी यह बात, पचास साल के बाद स्वीकार करनी पड़ रही है। दस सालों से रोज व्यक्तिगत संपत्तियों को जबरदस्ती छीना था। लाखों लोगों की हत्याएं करके जो छीना था, वह उन्हें वापस दिया जा रहा है। और रूस के अखबारों के एडिटोरियल पढ़ें तो रोज उसमें यह बात होती है कि राष्ट्र के लिए श्रम करो। मालूम होता है, कोई श्रम नहीं कर रहा है। नहीं तो बार-बार रोज एडिटोरियल लिखने की कोई जरूरत ही नहीं है कि राष्ट्र के लिए श्रम करो।

हम चिल्लाएं तो समझ में आता है, रूस में सब नेता चिल्लाते हैं कि राष्ट्र के लिए श्रम करो। कोई श्रम नहीं कर रहा है। ख्रुश्चेव अपने पूरे वक्तव्यों में, जो उसने रूस में दिए हैं, निरंतर यह कहता रहा है कि लड़के अलाल होते जा रहे हैं, कोई काम करने को राजी नहीं है। असल में पचास साल स्टैलिन ने काम करवाया बंदूक के कुंदे के बल। जिस दिन से स्टैलिन गया, उस दिन से बंदूक का कुंदा ढीला करना पड़ा और बंदूक का कुंदा ढीला हुआ कि काम ढीला हुआ।

व्यक्ति के पास इनिशिएटिव चाहिए। उसके पाच चेतना है, उस चेतना को प्रेरणा चाहिए। अगर गरीब में प्रेरणा पैदा की जाए कि वह भी अमीर हो तब तो यह मनुष्य समृद्ध हो सकता है, लेकिन गरीब की इस ईर्ष्या का दुरुपयोग किया जा रहा है। राजनीतिज्ञ इसका शोषण कर सकता है। वह कह सकता है कि तुम्हें अमीर होने की जरूरत नहीं है। अमीर को गरीब बनाने की जरूरत है, उससे सब ठीक हो जाएगा।

जिसे हम समाजवाद कह रहे हैं वह गरीब को अमीर बनाने की योजना नहीं है। वह अमीर को गरीब बनाने की योजना है। कोई हर्जा न था अगर गरीबों को लाभ हो सकता, लेकिन गरीबों को कोई लाभ नहीं हो सकता, सिर्फ गरीबी बढ़ेगी; हां थोड़ी सी राहत मिलेगी। अगर दुनिया में इतने लोग हैं और इसमें दस आदमियों के पास दो-दो आंखें हैं और बाकी लोगों के पास एक-एक आंख है, तो हम मांग सकते हैं कि नहीं यह नहीं चलेगा कुछ लोगों के पास आंखें हैं और कुछ के पास एक, एक उपाय तो यही है कि जिनके पास एक ही आंख है उनकी दूसरी आंख का इलाज हो। और उसमें उन दस लोगों का उपयोग किया जा सकता है जिनके पास दोनों आंखें हैं। लेकिन दूसरा उपाय यह है कि हम उन दस लोगों की भी एक-एक आंख कर दें।

इससे सबके पास दो-दो आंखें न रह जाएंगी, लेकिन बड़ी राहत मिलेगी कि सबके पास एक-एक हो गई। इससे चित्त को बड़ी शांति मिलेगी। आदमी का मन बहुत अजीब है। आदमी अपने दुख से उतना परेशान नहीं होता जितना दूसरे क सुख से हो जाता है। आदमी अपने दुख से उतना दुखी नहीं होता, जितना दूसरे के सुख से व्यथा में पड़ जाता है। दूसरे का सुख बरदाश्त के बाहर हो जाता है। खुद के दुख को तो

आदमी किसी तरह बरदाश्त कर लेता है। इसलिए अगर सब दुखी हैं तो दुख की पीड़ा कम हो जाती है। अगर सब गरीब हों तो गरीबी का बोझ मिट जाता है। अगर सब लंगड़े-लूले हों तो चित्त को बड़ा विश्राम मिलता है।

मैंने सुना है एक आदमी के संबंध में कि उसने बहुत दिन भगवान की पूजा और प्रार्थना की और वरदान मांगता रहा और भगवान प्रकट हुए और उन्होंने कहा कि वरदान ले ले, तो उसने कहा कि आप ही जो ठीक समझें दे दें; पर ऐसा कुछ दें जो सदा काम आता रहे। तो भगवान ने उससे कहा कि ठीक तू जो भी मांगेगा वह तुझे मिल जाएगा, लेकिन साथ ही यह भी कि तेरे पड़ोसी को उससे दुगना मिल जाएगा।

उस आदमी ने सर पीट लिया कि भगवान भी किस तरह का है। पड़ोसियों को नीचा दिखाने के लिए तो इतने दिनों से भगवान की प्रार्थना करता रहा था। यह वरदान किस किस्म का है? उसने घर आकर लाख रुपये मांगे, पता चला कि पड़ोसियों के घर में लाख रुपये बरस गए। उसे लाख रुपया बिल्कुल दिखाई पड़ना बंद हो गया, उसे दो लाख की पीड़ा ने घेर लिया। उसने कहा, मैं खुद ही अपने हाथ से उनके घर में

दो लाख गिरा रहा हूं। उसने सोचा, कोई तरकीब सोचनी पड़ेगी। आकर उसने भगवान से कहा कि मेरी एक आंख छीन ले। उसकी एक आंख चली गई, पड़ोसियों की दोनों आंखें चली गईं।

वह बड़ा तृप्त हुआ अंधों में काना राजा हो गया और फिर उसने भगवान से कहा, मेरे घर के सामने एक कुंआ खोद दे और उसके पड़ोसियों के घर के सामने दो-दो खुद गए, और वे अंधे उस कुंए में गिरने लगे। अब दिल को जरा राहत मिलती है। यह भी क्या पागलपन तूने किया कि लाख हमारे घर में गिरे और दो लाख उनके घर में गिर जाएं।

आदमी अपने को भी दुख देने को राजी हो जाता है, अगर दूसरे को दूख देने का मौका मिल जाए। आदमी के इस चित्त का समाजवाद के नाम से शोषण किया जा रहा है।

सारी दुनिया में समाजवाद समता लाने की बातचीत करता है। ईर्ष्या जगाने का काम करता है। उसका मूल आधार ईर्ष्या और द्वेष पर है। बड़ा वर्ग भूखा है, दीन है, दुखी है। यह सच है, इसकी दीनता मिटनी चाहिए, इसका दुख मिटना चाहिए। इसकी जिंदगी में कुछ आना चाहिए, यह बिल्कुल जरूरी है। लेकिन जो थोड़ा सा वर्ग सुखी दिखाई दे रहा है, उसकी खुशी पोंछ देने से कुछ भी नहीं होगा। हां, एक फर्क होगा, अगर हम सुखी लोगों को पोंछ डालें तो दुखी लोगों को पता चलना बंद हो जाएगा। उनके पास कोई कंपेरेटिव स्केल नहीं रह

जाएगा। इसका बहुत उपयोग किया गया है। जैसे, एक मुल्क में हमने एक उपयोग किया था कि हमने शूद्रों की एक सीमा बांध दी थी। उस सीमा के बाहर शूद्र नहीं जा सकता था। उसको पैसे तो मिलते नहीं थे, खाने को मिल जाता था। पुराने कपड़े मिल जाते थे, बासी भोजन मिल जाता था। शूद्र की एक बंधी हुई जिंदगी थी। उसमें विकास का कोई उपाय न था। इसलिए कभी किसी मेहतरानी ने कभी किसी महारानी से कोई ईर्ष्या नहीं की। ईर्ष्या का कोई उपाय ही नहीं था। फासला इतना ज्यादा था कि कहां महारानी और कहां मेहतरानी। अगर मेहतरानी ईर्ष्या भी करेगी तो पड़ोसी मेहतरानी से, क्योंकि उसने एक लकड़ी का कड़ा और पहन लिया। किसी मेहतरानी ने किसी महारानी से किसी महारानी से कभी ईर्ष्या नहीं की, क्योंकि उसके आस-पास का जो पड़ोस था उस पड़ोस तक उसकी नजर जाती थी और उस नजर में इसको ईर्ष्या योग्य कुछ नहीं दीखता था। बड़ी तृप्ति थी।

समाजवाद इसी तृप्ति को और बड़े पैमाने पर फैला देता है। वह सारे मुल्क को एक सा गरीब कर देता है। ध्यान रहे, मैं कह रहा हूं एक सा गरीब, एक सा अमीर नहीं, क्योंकि एक सा अमीर करना समाजवाद के हाथ में नहीं है। एक सा गरीब करना समाजवाद के हाथ में है। एक सा अमीर करना राज्य के हाथ में नहीं है, एक सा गरीब करना आज राज्य के हाथ में है। एक सा अमीर करना हो तो सैकड़ों वर्ष का श्रम चाहिए। एक सा गरीब करना हो तो पार्लियामेंट का एक ही कानून काफी है। निश्चित ही एक सा अमीर करना बच्चों का खेल नहीं है। एक सा अमीर तो हम कर नहीं सकते। फिर कम से कम एक सा गरीब तो कर ही सकते हैं--इसको हम क्यों चूकें--जब तक एक सा अमीर होगा, तब तक हम एक सा गरीब कर दें!

समाजवाद का जो आकर्षण है साधारण जन के मन में, वह आकर्षण ईर्ष्याजन्य है। समाजवाद मनुष्य की ईर्ष्या का दुरुपयोग कर रहा है और उससे कुछ समृद्धि नहीं आ जाएगी, उससे कुछ संपत्ति पैदा नहीं हो जाएगी। क्योंकि संपत्ति पैदा करने का जो नियम है, उन नियमों की बुनियादी बात व्यक्तिगत संपत्ति है। मैं व्यक्तिगत संपत्ति का पक्षपाती नहीं हूं, लेकिन मैं मानता हूं कि व्यक्तिगत संपत्ति उस दिन जानी चाहिए जिस दिन संपत्ति बेकार हो जाए और संपत्ति उस दिन बेकार होगी जिस दिन आवश्यकता से अधिक हो जाएगी। उसके पहले संपत्ति बेकार नहीं हो सकती।

पानी जरूरत से ज्यादा है तो बिना मूल्य के मिल जाता है, हवा जरूरत से ज्यादा है, बिना मूल्य मिल जाती है। असल में मूल्य पैदा ही होता है न्यूनता से। जो चीज कम होती है उसका मूल्य हो जाता है। मूल्य न्यूनता है। व्यक्तिगत संपत्ति तब तक मूल्यवान रहती है जब तक संपत्ति कम है। जिस दिन संपत्ति एफ्लुएंट होगी, जिस दिन संपत्ति इतनी ज्यादा होगी कि उस पर व्यक्तिगत कब्जा करना बेमानी और पागलपन हो जाएगा, उस दिन की व्यक्तिगत संपत्ति समाप्त हो सकती है, उसके पहले नहीं। उसके पहले अगर हमने व्यक्तिगत संपत्ति समाप्त की तो वह जो संपत्ति समाप्त की तो वह जो संपत्ति को पैदा करने की प्रेरणा है, वह भी वहीं समाप्त हो जाएगी।

संपत्ति को पैदा करने का उपाय पूंजीवाद के पास है, समाजवाद के पास नहीं है। समाजवाद पूंजी को बांट सकता है, पैदा नहीं कर सकता, और अगर समाजवाद संपत्ति को पैदा करेगा, तो उसे जो व्यक्तिगत प्रेरणा है उसकी जगह फोर्स और वायलेंस का उपयोग करना पड़ेगा। हिंसा का उपयोग करना पड़ेगा। तो जहां आज आदमी संपत्ति पैदा करने के लिए खुद दौड़ता है, वहां फिर पीछे बंदूक लगानी पड़े, तब वह दौड़े। लेकिन बंदूक से बहुत दिन दौड़ना बहुत मुश्किल है। क्योंकि वह जबरदस्ती की व्यवस्था है, सहज व्यवस्था नहीं है। मेरी दृष्टि में संपत्ति अगर अतिरिक्त हो जाए तो अपने आप बेमानी हो जाएगी। जिस दिन अतिरिक्त हो जाएगी उस दिन

व्यक्ति को संपत्ति राज्य के हाथों में समर्पित करनी पड़ेगी। जिस दिन अतिरिक्त हो जाएगी उस दिन व्यक्तिगत संपत्ति का जो पशु है, वह अपने आप विदा हो जाएगा बिना राज्य को मालिक बनाए। अभी तो राज्य मालिक बन जाएगा। लेकिन ध्यान रहे, थोड़े से व्यक्तिगत पूंजीपतियों के हाथ में संपत्ति का होना उतना खतरनाक नहीं, जितना राज्य के हाथ में। राज्य की ताकत तो है ही, और धन की भी ताकत राज्य के हाथ में आ जाए तो राजनीति अपने आप टोटलिटेरियन हो जाती है। अपने आप अधिनायक, तानाशाह हो जाती है। क्योंकि तब राज्य के खिलाफ कोई ताकत मुल्क में नहीं रह जाती।

राजनीतिज्ञ के हाथ में दोनों ताकतें इकट्ठी हो जाएं, राज्य की भी और धन की भी, तो तीसरी कोई ताकत ही नहीं है मुल्क के पास। फिर राजनीतिज्ञ भगवान बन जाता है। स्टैलिन करीब-करीब भगवान की तरह जिया, इसलिए उसे अदृश्य जीना पड़ता था, क्योंकि भगवान दृश्य नहीं होता, सामने प्रकट नहीं होता।

मैंने सुना है कि स्टैलिन को अपनी शक्ल का एक डबल भी रखना पड़ा था, एक आदमी रखना पड़ा था; क्योंकि जनता में सलामी वगैरह लेने के लिए उस आदमी का उपयोग करना पड़ता था। क्योंकि कोई गोली मार दे, कोई छुरा भोंक दे तो... जो आदमी रूस में समाजवाद लाया, जो आदमी रूस में संपन्नता लाया, जैसा समाजवादी कहते हैं कि जिस आदमी ने रूस में स्वर्ग उतारा, वह आदमी सड़क पर चलने में उरता है। स्वर्ग जरा संदिग्ध मालूम पड़ता है। मालूम होता है इस आदमी ने नरक उतारा है, अन्यथा डरने का इतना कोई कारण नहीं है।

स्टैलिन का भय बताता है कि रूस की जनता के ऊपर क्या गुजरी। स्टैलिन छिप कर जीया है। सलामी तक लेने का मजा खो दिया--बड़ा मजा है! कभी-कभी ऐसा हो जाता है। एक आदमी सलामी लेने के लिए राज्य की ताकत हाथ में लेता है और सलामी के लिए दूसरा आदमी भेजना पड़ता है कि कोई गोली न मार दे। तो ऐसे अपने घर ही भले थे। वहां कौन सी तकलीफ थी? एक आदमी राष्ट्र के ऊपर सवार होता है और लोग उसे देखें कि वह कुछ है, लेकिन फिर उसे छिप कर बैठना पड़ता है कि कहीं कोई गोली न मार दे!

रूस में अगर स्वर्ग उतर आया है तो स्टैलिन को भयभीत होने की कोई जरूरत नहीं थी। रूस में अगर स्वर्ग उतर आया है तो रूस में विचार की स्वतंत्रता को नष्ट करने की कोई जरूरत नहीं थी। लेकिन विचार का कोई मौका नहीं। कुछ कारण थे। स्वर्ग नहीं उतर आया, सिर्फ दीनता बढ़ गई ओर दीनता ही नहीं बढ़ गई, बल्कि आदमी से काम लेने के लिए जबरदस्ती वायलेंस का उपयोग करना पड़ रहा है। रूस एक मिलिटरी कैंप बन कर खड़ा हो गया और अब चीन मिलिटरी कैंप बन रहा है! कोई नहीं जानता कि हम भी वही नासमझी कर रहे हैं।

एक बार राज्य के हाथ में धन की शक्ति गई तो फिर राज्य को चुनौती देने की कोई शक्ति मुल्क में नहीं रह जाती और एक बार व्यक्ति की व्यक्तिगत संपत्ति नष्ट हो गई कि व्यक्ति की ताकत नब्बे प्रतिशत समाप्त हो जाती है। आपके पास भी थोड़ी सी ताकत सोचने की मालूम पड़ती है तो उस ताकत में आप अपनी रोटी खुद कमाते हैं। उस ताकत में आपके पास अपना मकान, उस ताकत में आपकी व्यक्तिगत दुनिया है, अगर कल आपकी सारी व्यक्तिगत दुनिया छीन ली गई और रोटी भी राज्य से मिलने लगी, कपड़ा भी राज्य से मिलने लगा, मकान भी राज्य से मिलने लगा तो आप अचानक पाएंगे कि आपकी आत्मा खो गई, आप बिक गए हैं और जिसका नमक उसकी नमकहरामी शुरू हो जाती है, अचानक--सहज ही। फिर राज्य के हाथ में इतनी ताकत होती है कि जरा सा इनकार और मृत्यु के सिवाय कुछ हाथ नहीं लगता।

मैंने सुनी है एक घटना कि ख्रुश्चेव एक कम्युनिस्ट पार्टी की विशेष मीटिंग में बोल रहा था और बोलते वक्त उसने स्टैलिन के संबंध में बताया कि उसने कितनी हत्याएं कीं और कितने लोगों को मारा और कितने लोगों को जेलों में डाला। रूस में जनता को आंकड़े नहीं बताए गए कुछ वर्षों तक। क्योंकि इतने लाखों लोग मार डाले गए थे कि उनका दुनिया को पता चल जाएगा कि इतने नाम अचानक विदा कैसे हो गए। सेंसस लिस्ट में नाम नहीं हैं। ये कहां गए, थोड़े-बहुत लोग नहीं, अंदाज है एक करोड़ लोग रूस में स्टैलिन के वक्त मारे गए। तो फिर क्यों कहना था कि स्टैलिन ने इतने आदमी मारे, इतनी हत्या की। तो एक आदमी ने खड़े होकर कहा कि आप भी स्टैलिन के साथियों में से हैं। आप भी प्रतिबिंब के हिस्से थे, आप भी उन दस-बारह लोगों में से थे जो स्टैलिन की ताकत में थे, आपने उस वक्त क्यों नहीं कहा?

ख्रुश्चेव एक क्षण के लिए रुका और फिर उसने कहा, महाशय, आप फिर से खड़े होकर अपना नाम और अपना पता दीजिए। फिर वह आदमी खड़ा नहीं हुआ। ख्रुश्चेव ने कहा, इसी वजह से उस वक्त मैं भी नहीं खड़ा हुआ था। यही कारण है, नहीं तो आज कहने को नहीं बचता, उसी वक्त खत्म हो गया होता। पति भी अपनी पत्नी से रात मन की बातें खोल कर नहीं कह सकता, क्योंकि पता नहीं पत्नी किसी को बता दें। बाप अपनी बेटी से खुल कर नहीं बात कर सकता, क्योंकि पता नहीं बेटी लड़कों की कम्युनिस्ट पार्टी में जाकर किसी को खबर कर दे।

सारा मुल्क जासूस हो गया था। आज भी चीन में वही हालत है। एक दफा राज्य के हाथ में पूरी ताकत चली जाए तो व्यक्ति की हैसियत टूट जाती है, समाप्त हो जाती है। और जहां विचार की स्वतंत्रता नहीं वहां बड़े पेट को लेकर क्या किया जा सकता है। उसका क्या उपयोग? उसका क्या अर्थ? आदमी को वेजिटेट नहीं करना है। आदमी को सिर्फ खाकर सो नहीं जाना है। आदमी को जिंदगी में खाना और सोना जरूरी है जरूर, लेकिन किन्हीं और बातों के लिए जरूरी है। उसके भीतर की आत्मा विकसित हो सके, असकी चेतना का फूल भी खिल सके; लेकिन नहीं, यह कुछ भी नहीं हो सकता। सिर्फ जड़ों को पानी मिल सकता है। फूल भर खिलाने की कोशिश मत करना। क्योंकि जब फूल खिलाने हैं तो व्यक्ति को मान्यता देना जरूरी है। समाजवाद, समूहवाद (कलेक्टिविज्म) यह समूह को मान्यता देता है। उसका कहना है कि समूह के लिए व्यक्ति की कुर्बानी दी जा सकती है। समूह जब ठीक समझे तो व्यक्ति की हत्या कर सकता है। समूह के हित में न हो तो व्यक्ति को मारा जा सकता है, लेकिन बड़े मजे की बात है--समूह कौन? राज्य! और राज्य कौन? स्टैलिन, माओ!

एक आदमी तय करेगा कि समूह की इच्छा क्या है। एक आदमी तय करेगा कि समूह के हित में क्या है, एक आदमी तय करेगा कि समूह का मंगल क्या है? और हत्या व्यक्ति की की जा सकती है, और किसी भी व्यक्ति की की जा सकती है, उन्हीं व्यक्तियों की जिनके समूह के लिए सब आयोजित किया जा रहा है और एक-एक व्यक्ति में हम सब आ जाते हैं।

बड़े मजे की बात है--लेकिन तर्क बड़ी फैन्सिज पैदा करता है। सोशलिज्म के पास, समाजवाद का एक फेलसियस तर्क है--एक बहुत भ्रांत तर्क। उसका कहना है, समाज सत्य है व्यक्ति नहीं। जबकि सच्चाई बिल्कुल उलटी है। व्यक्ति सत्य है और समाज तो केवल व्यक्तियों के जोड़ का नाम है। समाज की कोई स्थिति नहीं है। समाज कहीं भी नहीं है। मैं बहुत बार खोजता फिरता हूं कि मुझे कहीं समाजवाद मिले, समाज मिल जाए। जहां भी जाता हूं, व्यक्ति ही मिलता है। आपके घर आता हूं समाज खोजने, आप मिल जाते हैं। दूसरे के घर जाता हूं, दूसरा मिल जाता है। समाज कहीं मिलता नहीं। समाज सिर्फ एक संज्ञा है, एक शब्द। व्यक्ति एक सत्य है और यह जो सत्य-व्यक्ति है, वह शब्द-समाज के लिए कुर्बान किया जा सकता है।

लेकिन मार्क्स की धारणा यह थी कि ऐतिहासिक प्रतिक्रिया समाज की चल रही है। जो भी बाधा डाले उसको समाप्त कर दो। समाज की ऐतिहासिक प्रतिक्रिया को आगे बढ़ना है, लेकिन कोई ऐतिहासिक प्रक्रिया नहीं चल रही है। मनुष्य अपना नियमतः चुनाव कर रहा है और अगर रूस ने यह तय किया हो कि वह कम्युनिस्ट है, सोशलिस्ट है या चीन ने तय किया है और यह भी पूरे विचार में तय नहीं किया--अगर चीन का पूरा समाज यह तय करे कि समाजवादी होना है तो हिंसा की कोई जरूरत न रह जाए। यह भी एक माइनारिटी तय करती है और पूरे मुल्क पर थोपती है, इसलिए हिंसा की जरूरत पड़ती है।

भाग्यवाद समाजवाद की बुनियादी गलतियों में से एक है। मैंने कहा कि यह मुल्क चुनाव कर सकता है, क्योंकि हम भाग्यवादी हैं पुराने। हम बहुत पुराने भाग्यवादी हैं और हम मानते ही हैं कि जो कर रहा है, भगवान कर रहा है। भगवान की जगह हिस्टरी को रख लेने में बहुत दिक्कत नहीं होगी। भगवान की जगह इतिहास के देवता को बिठा लेने में कौन सी कठिनाई है? मार्क्स कहता है, जो कर रहा है वह इतिहास कर रहा है। हम कहते है, जो कर रहा है वह भगवान कर रहा है।

हम इस मुल्क को ऐसे ही मानते रहे कि आदमी कुछ नहीं कर रहा है। मार्क्स सिर्फ इतना ही कहता है कि भगवान का थोड़ा नाम बदल कर हिस्ट्री कर दो, इतिहास कर दो, बस काम चल जाएगा। मंदिर के देवता के नीचे लिख दो इतिहास का देवता, फिर काम चल जाएगा। हम बहुत जल्दी से यह बदलाहट कर सकते हैं। हम भाग्यवादी कौम हैं। इसलिए मैं मानता हूं कि समाजवाद हमारे लिए बहुत बड़ा खतरा है। वह भी भाग्यवादी विचार है और हमसे भी ज्यादा भाग्यवादी विचार है, क्योंकि हमारे भीतर तो शायद थोड़ी-बहुत सुविधा है कि ज्योतिष को बचा कर निकल गए और भाग्य को बचाने का कोई उपाय कर लें। लेकिन समाजवाद के पास भाग्य से बच कर निकलने का कोई उपाय नहीं। भाग्य चरम और अल्टीमेट है।

समाजवाद आना ही है, यह बड़ी खतरनाक बात है। हम चुनें और आए तब समझ में आता है। आना ही है तो खतरनाक बात है। लेकिन इसके प्रचार का परिणाम होता है। अगर लोगों के दिमाग में यह बात दोहराए चले जाओ कि समाजवाद आना ही है, आना ही है, आना ही है, तो धीरे-धीरे लोग यह सोचने लगते हैं कि आना ही होगा। जब कि चारों तरफ से यह बात चल रही है कि समाजवाद आना ही है। फिर प्रचार ने सौ वर्षों में सारी दुनिया के दिमाग में यह खयाल बिठा दिया है कि समाजवाद आना ही है। कोई लाने की बात नहीं है। लेकिन हम जो मान लेते हैं, वही हो जाता है।

उदाहरण के लिए मैं आपसे कहूं, आज से कोई एक सौ पचास वर्ष पहले यूरोप में एक पादरी ने घोषणा की कि अगले वर्ष प्रलय हो जाने वाला है और जो जीसस ने कहा था कि अब अंतिम दिन करीब आ रहा है और कयामत करीब आ रही है, इसलिए तैयार हो जाओ। पहले लोग हंसे, लेकिन वह चिल्लाए चला गया, समझाए चला गया। और आप हैरान होंगे कि ठीक उस रात जिसके दूसरे दिन प्रलय हो जाने वाली थी, अनेक लोगों ने मकान में आग लगा दी, और अनेक लोग घर छोड़ कर भाग गए और अनेक लोगों ने संपत्ति का त्याग कर दिया। उन्होंने कहा, जब कल बचना ही नहीं है तो क्यों न हम रिनन्सिएशन कर दें, क्यों न हम छोड़ दें और अनेक लोग जाकर खड़े हो गए सुबह नदियों और समुद्र-तटों के किनारे कि अब महाप्रलय आ रही है। सूरज निकल आया और महाप्रलय नहीं आई। दोपहर हो गई, महाप्रलय नहीं आई। फिर वे बड़ी मुश्किल में पड़े, क्योंकि कोई घर जला आया था, कोई संपत्ति लुटा आया था, कोई बांट आया था। वह तो जिन्होंने भरोसा नहीं किया था, वे लोग बड़े फायदे में रहे। जब वे लौट कर आए तो देखा कि दुनिया वहीं की वहीं है। फकीर को ढूंढा, पादरी

नदारथ था, वह मिला नहीं। उसका कहीं पता नहीं चला, वह कहां गया। उसने जब सूरज को उगते देखा होगा तो मुश्किल हो गई होगी।

रूस में एक आदमी ने यह प्रचार किया कि जीसस का एक वचन है, यही कोई पचास-साठ-सत्तर साल पहले कि जीसस का वचन है, प्रभु के नाम पर यूनॅक हो जाओ, प्रभु के नाम पर नपुंसक हो जाओ। ब्रह्मचर्य का मतलब--न स्त्री रह जाओ, न पुरुष रह जाओ। अपनी जननेंद्रियों को काट डालो। जो आदमी जननेंद्रिय के साथ पहुंचेगा उसको स्वर्ग के राज्य में प्रवेश नहीं मिलेगा। आप कल्पना नहीं कर सकते कि रूस में पचास हजार लोगों ने जननेंद्रियां काट डालीं। पता नहीं पहुंचे भगवान के घर कि नहीं। रूस के जार को नियम बनाना पड़ा कि कोई आदमी इस तरह का काम करे तो उसे फौरन सजा दी जाए, क्योंकि यह आग फैलने लगी जोर से कि भगवान के राज्य में वही पहुंच सकेगा, जो न स्त्री है, न पुरुष। अजब हैरानी की बात है, आदमी जिस बात के प्रचार से राजी हो जाए, बात सक्रिय हो जाती है तत्काल और उसकी सक्रियता एकदम शीघ्रता से फैलनी शुरू हो जाती है।

सौ वर्षों से सारी दुनिया को कहा जा रहा है कि समाजवाद अनिवार्य है। वह अनिवार्य हुआ जा रहा है। हिटलर ने अभी हमारे सामने एक मानसिक प्रयोग किया। उन्नीस सौ चौदह के युद्ध में जर्मनी हारा। उस युद्ध में हिटलर एक सिपाही था, साधारण सिपाही। हारने के बाद वह मिलिट्री से निकाल दिया गया। क्योंकि उसके पैर में चोट थी और वह मेडिकली अनफिट हो गया। पांच-सात सिपाहियों ने, जो मेडिकली अनफिट होकर बाहर निकाल दिए गए थे, अपनी पार्टी खड़ी की। कोई सोच भी नहीं सकता था कि ए सात आदमी सारी दुनिया के इतिहास को हिला डालेंगे और एक आदमी इनफिरिआरिटी का इतना उपद्रवी सिद्ध होगा।

उसने एक प्रचार करना शुरू कर दिया। प्रचार बहुत कारगर हुआ, क्योंकि लोगों की ईर्ष्या को अपील कर गया। उसने लोगों से कहा कि हमारे हारने का कारण यहूदियों की अपवित्रता है। यहूदियों का कोई लेना-देना नहीं था। यहूदियों को भी पता नहीं था कि उनकी वजह से जर्मनी हार गया। जब उन्होंने सुना तो वे लोग हंसे। उन्होंने कहा कि क्या पागलपन की बात कर रहे हो। फिर वह पागलपन की बात करता चला गया। उसने जर्मनी के घर-घर यह खबर पहुंचा दी कि यहूदियों की वजह से हम हार गए। पहले तो जर्मनों ने भी सोचा, यह क्या पागलपन की बात है, यहूदियों की वजह से क्यों हारेंगे। यहूदियों बेचारों ने तो कुछ भी नहीं किया। लेकिन यह प्रचार जारी ही रहा। यह प्रचार धीरे-धीरे जोर पकड़ने लगा। यहूदियों के पास धन था। जर्मनी की सबसे बड़ी शक्तिशाली धन की सत्ता यहूदियों के पास थी, वे परेशान हो गए, गरीब मुल्क राजी हो गया कि यहूदियों ने गड़बड़ की, इनको लूटने की सुविधा है। वे लूटने के लिए राजी हो गए और हिटलर के साथ खड़े हो गए। आखिर यहूदियों की हत्या कर दी गई। कोई एक करोड़ यहूदी काट डाले गए। पूरा जर्मनी जैसा बुद्धिमान मुल्क राजी हो गया। पाकिस्तान बंटने के लिए जिन्ना ने यहां राजी कर लिया। एक दफा पक्का कर लिया कि बंट कर रहेगा और फिर बंट कर रहा।

इस वक्त जो समाजवाद की हवा चलती है कि आकर ही रहेगा, बड़ी खतरनाक बात है। समाजवाद अनिवार्यता नहीं है। हम चुनेंगे तो आ सकता है, वह भी हमारा चुनाव है। और चुनाव हमको सोच कर करने जैसा है। और बहुत से बिंदु हैं जिन पर कल-परसों की चर्चा में आप से बात करूंगा। आपके जो भी सवाल हों, वह मुझे लिख कर दे देंगे, ताकि उन सब पर बात हो सके।

मेरी बातों को इतनी शांति और प्रेम से सुना, उससे बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में मैं सबके भीतर बैठे प्रभु को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

समाजवाद अर्थात आत्मघात

दूसरा प्रवचन

समाजवादः दासता की एक व्यवस्था

मेरे प्रिय आत्मन्!

कल के विचारों के संबंध में बहुत से प्रश्न पूछे गए हैं।

एक मित्र ने पूछा है कि समाजवाद का अर्थ क्या है?

समाजवाद का अर्थ है, राज्य-पूंजीवाद--स्टेट-कैपिटलिज्म। समाजवाद का अर्थ है, संपत्ति व्यक्तियों के पास न हो, संपत्ति की मालकियत राज्य के पास हो। लेकिन समाजवाद यह नहीं कहता है कि वह "राज्य-पूंजीवाद" है। वह कहता हे, वह पूंजीवाद का विरोधी है। यह बात झूठ है। समाजवाद पूंजीवाद का विरोधी नहीं है। समाजवाद, जो पूंजी की सत्ता बहुत लोगों में वितरित है उसे राज्य में केंद्रित कर देना चाहता है। और व्यक्तियों के हाथ में जब पूंजीवाद इतना नुकसान पहुंचाता है तो राज्य के हाथ में कितना पहुंचाएगा, इसका हिसाब लगाना बहुत मुश्किल है।

जब साधारण जनों के हाथ में बंटा हुआ डीसेंट्रलाइज्ड कैपिटलिज्म, विकेंद्रित पूंजीवाद इतनी तकलीफें देता है तो राज्य के हाथ में सेंट्रलाइज्ड होते ही कितनी तकलीफ देगा, इसका हिसाब लगाना मुश्किल है। यह किसी बीमारी को दूर करने की जगह बीमारी को कंसंट्रेट करना है। किसी बिमारी को खत्म करने के बजाय उस बीमारी को एक ही जगह, एक ही केंद्र पर इकट्ठा करना है।

इसलिए समाजवाद का दूसरा अर्थ है, गुलामी की, दासता की एक व्यवस्था। समाजवाद का अर्थ है, राज्य मालिक हो जाए और समाज के सारे लोग गुलाम और दास की हैसियत से जीएं। असल में पूंजीवाद ने पहली बार व्यक्ति को हैसियत और स्थिति दी। समाजवाद का मतलब है, सामंतवाद वापस लौट आए। इतना ही फर्क होगा कि जहां राजा थे वहां राजनीतिज्ञ होंगे। राजाओं के हाथ में इतनी ताकत कभी न थी जितनी समाजवाद राजनीतिज्ञ को दे देगा।

समाजवाद भविष्य के लिए भयंकर गुलामी का सूत्रपात है। और अगर स्वतंत्रता के प्रेमियों को थोड़ी सी स्वतंत्रता की आकांक्षा हो तो समाजवाद से बहुत ही सचेत होने की जरूरत है। समाजवाद का अर्थ है कि राज्य के हाथ में देशकी समस्त शक्तियां केंद्रित हो जाएं। राज्य के हाथ में जितनी भी शक्तियां हैं उनका भी राज्य बुरी तरह दुरुपयोग करता है। राजनीतिज्ञ के हाथ में जितनी शक्ति है उससे भी राजनीतिज्ञ सारे जीवन पर छाया रहता है। लेकिन उसका मन बेचैन है, उसकी महत्वाकांक्षा नहीं मानती।

अभी भी एक शक्ति उसके हाथ के बाहर है--धन की, उत्पादन की। वह उसे भी अपने हाथ में लेना चाहता है। यह बड़े मजे की बात है कि राज्य है समाज का नौकर, सरवेंट; लेकिन सरवेंट मालिक होना चाहता है, ओनरशिप चाहता है। राज्य चाहता है कि नमाज की मालकियत भी उसके हाथ में हो। हम रास्ते पर एक ट्रैफिक के पुलिस इंस्पेक्टर को खड़ा किए हुए हैं कि रास्ते पर व्यवस्था करे। कोई गाड़ी गलत रास्ते से न गुजरे, और कोई आदमी रास्ते के बीच से न चले, कोई बाएं चलने का नियम न तोड़े। वह पुलिसवाला धीरे-धीरे मालिक हो जाता है, क्योंकि बड़ी से बड़ी गाड़ी भी निकले तो भी उसके इशारे पर रुकती है और सीटी बजाय तो बड़े से बड़ा आदमी सड़क पार नहीं कर सकता। धीरे-धीरे वह पुलिसवाला कह सकता है कि इतनी परेशानी क्यों करते

हो? मालकियत भी गाड़ियों की मुझे दे दें और रास्ते पर चलने वाले लोगों की मालकियत भी मुझे दे दें, व्यवस्था बिल्कुल ठीक हो जाएगी।

उस पुलिसवाले को मालकियत के लिए नहीं खड़ा किया है वहां, व्यवस्था के लिए खड़ा किया है। और व्यवस्था का मतलब ही यह है कि मालिक कोई और होंगे। मालकियत भी राज्य के हाथ में जाती है तो व्यवस्थापक और मालिक एक हो जाते हैं। असल में यही हुआ अब तक।

रूस और चीन में जो क्रांति हुई है वह समाजवादी नाम को है, नाम समाजवाद है, क्रांति तो मैनेजेरियल है। असल में व्यवस्थापक मालिक हो गए हैं। जो कल मैंनेजर्स थे, जो मुनीम थे मुल्क के लिए, वे मुल्क के मालिक हो गए।

राज्य को इतनी शक्ति हाथ में देने से बड़ा खतरा और कुछ भी नहीं हो सकता है। पहले इतना खतरा नहीं था। अब खतरा बहुत ज्यादा है, वह मैं आप से कहूं। पहली बात तो यह है कि इधर पिछले बीस-पच्चीस वर्षों में वैज्ञानिकों ने इतने साधन खोज निकाले हैं कि जो राज्य के हाथ में आदमी की चरम परतंत्रता का कारण बन सकते हैं। वैज्ञानिकों ने वे रासायनिक विधियां खोज निकाली हैं जिनके द्वारा आदमी के भीतर के चिंतन को नष्ट किया जा सकता है। विचार को नष्ट किया जा सकता है। बगावत के भाव को नष्ट किया जा सकता है। रासायनिकों ने वह व्यवस्था भी खोज निकाली है कि बच्चा पैदा हो तभी से उसके भीतर से कुछ नष्ट किया जा सके जो कभी बगावती हो सकता है। माइंडवाश के हजारों उपाय खोज निकाले हैं।

वैज्ञानिकों ने ताकत राज्य के हाथ में दे दी है इतनी बड़ी कि अब अगर कोई राज्य धन का भी मालिक हो जाए, तो उस राज्य से फिर कोई छुटकारा समाज का नहीं है। लोकतंत्र की हत्या और स्वतंत्रता की हत्या अनिवार्य है, अगर राज्य समाज की संपत्ति के उत्पादन का मालिक बन जाए। और एक और बड़े मजे की बात है कि राज्य जितना भी काम करता है, सब में असफल और अकुशल है। उसकी अकुशलता का कोई हिसाब नहीं है। राज्य जो भी काम करता है, मुल्क को हानि पहुंचाता है। उस काम से कोई लाभ नहीं पहुंचता। लेकिन जो थोड़ा-बहुत लाभ व्यक्ति अपनी निजी संपत्ति, श्रम और बुद्धि से मुल्क को पहुंचा सकते हैं, वह उनकी भी मालकियत ले लेना चाहता है। हां, एक फायदा होगा इससे कि राज्य की अकुशलता दिखनी बंद हो जाएगी। और राज्य के हर वर्ष बढ़नेवाले हानि के दावे फिर बुरे मालूम न पड़ेंगे। क्योंकि लाभ का दावा करनेवाला ही कोई नहीं रह जाएगा, हानि के ही दावे रह जाएंगे।

राज्य के हाथ में इतनी अकुशलता है कि उचित तो यह है कि राज्य के हाथ में जो काम है वह भी निजी व्यक्तियों के हाथ में चले जाएं और उचित तो यह है कि राज्य की जितनी ताकत है वह कम हो, क्योंकि राजनीतिज्ञ मनुष्य की छाती पर पत्थर की तरह बैठ गया है। राजाओं को हमने हटाया, उससे कोई बहुत फर्क नहीं पड़ा। राजनीतिज्ञ उसकी जगह छाती पर बैठ गया और इससे भी कोई फर्क नहीं पड़ता कि "अ" पार्टी का राजनीतिज्ञ बदले और "ब" का बैठ जाए। राजनीतिज्ञ सदा छाती पर रहेगा। "अ" और "ब" से कोई फर्क नहीं पड़नेवाला कि कांग्रेस बैठे, नई कि पुरानी, कि समाजवादी बैठे, कि जनसंघी बैठे। एक बात तय है कि मुल्क की छाती पर राजनीतिज्ञ बैठा होगा।

राजनीति इतनी भी महत्त्वपूर्ण नहीं है कि मुल्क के जीवन को दबा दे। मनुष्य के जीवन में और भी महत्त्वपूर्ण बहुत-कुछ है। लेकिन आज सिर्फ राजनीति महत्त्वपूर्ण है। अगर हमारे अखबारों को कोई पढ़े तो पता चलेगा कि मुल्क में सिवाय राजनीति के और कुछ नहीं हो रहा है। सिर्फ राजनीति हो रही है।

जिंदगी सिर्फ राजनीति है? राज्य सिर्फ व्यवस्था है, फंक्शनल है कि वह मुल्क में अव्यवस्था न होने दे। और राज्य इसलिए नहीं है कि स्वतंत्रता छीन ले। राज्य इसलिए है कि कोई व्यक्ति किसी की स्वतंत्रता न छीन पाए। राज्य इसलिए है कि एक व्यक्ति दूसरे की स्वतंत्रता के जीवन में बाधा न डाल पाए। लेकिन धीरे-धीरे राज्य को पता चला कि हम ही सारी स्वतंत्रता क्यों न छीन लें। राजनीतिज्ञ सदा से पूरी शक्ति पाने का आकांक्षी रहा है। लेकिन आज तक मनुष्य-जाति के इतिहास में राजनीतिज्ञ कभी भी टोटेलिटेरियन, पूरी ताकत नहीं पा सका। अब समाजवाद के नाम से पा सकता है।

असल में अगर सारी मनुष्यता को गुलाम बनाना हो तो पहले मनुष्यों को समझाना जरूरी है कि तुम्हारे कल्याण के लिए यह गुलामी लाई जा रही है। तुम्हारे हित के लिए, तुम्हारे मंगल के लिए यह गुलामी लाई जा रही है। राजनीतिज्ञ को जरूरी है कि वह आप को परसुएड करे, समझाए और फुसलाए कि तुम्हारे हित में ही यह छुरी तुम्हारी छाती पर रख रहा हूं। लेकिन एक दफा छाती पर छुरी रख दी जाए तो हटाने की कोई ताकत फिर आदमी के समाज के पास नहीं है।

इसलिए मैं समाजवाद की सख्त खिलाफत करता हूं। इसलिए नहीं कि समाजवाद जिन बातों के लिए आश्रय और सहारा देता है, ओर जिन बातों को आदर्श की तरह आपके सामने रखता है उनका मैं विरोधी हूं। सच्चाई तो यह है कि समाजवाद जितने आदर्श कहता है उनमें से कोई भी आदर्श समाजवाद कभी भी नहीं ला सकता और उनमें से कोई भी आदर्श लाना हो तो समाजवाद से सचेत रहना जरूरी है। जैसे, उदाहरण के लिए--मार्क्स का खयाल है कि अगर समाजवाद सफल हो जाए तो दुनिया में वर्ग न रह जाएंगे--क्लासलेस सोसायटी, वर्गविहीन समाज पैदा हो जाएगा। यह असत्य है।

असल में समाजवाद दो नये तरह के वर्ग पैदा कर देगा। राज्य करनेवालों का वर्ग और राज्य जिन पर किया जाता है उनका वर्ग। और कोई फर्क नहीं पड़ेगा--मैनेजर्स और मैनेज्ड। और ध्यान रहे, पूंजीपति में और मजदूर में उतना फर्क नहीं है जितना राज्य करनेवाले और जिसके ऊपर राज्य किया जाता है उसमें फर्क और वसला हो जाता है। आज रूस में कम्युनिस्ट पार्टी की मेंबरशिप पाना कठिनतम बात है। क्योंकि कम्युनिस्ट पार्टी राज्य करने वालों की जमात है। आज रूस में पचास साल से पचास आदमियों का छोटा सा गुरप सारी ताकत हाथ में लिए बैठा है। इसमें कोई फर्क नहीं पड़ता कि स्टैलिन की जगह ख्रुश्चेव आता है कि ख्रुश्चेव की जगह कोई और आता है। लेकिन वह पचास आदमियों का एक ग्रुप, गैंग, पूरे रूस पर पचास साल से ताकत लिए बैठा है। उन पचास में से एक को हिलाना मुश्किल है। और एक ब्युरोक्रेसी, एक तंत्र पैदा हो गया है। वह तंत्र अलग है, जनता अलग है। और दोनों के बीच जो फासला है, उसका हिसाब लगाना कठिन है।

समाजवाद का दावा है कि एक दिन ऐसा आएगा कि "दि स्टेट विल विदर अवे"--राज्य जो है, वह बिखर कर गिर जाएगा--समाप्त हो जाएगा। यह भी झूठ है, यह नहीं हो सकता। क्योंकि समाजवाद कहता है कि पहले राज्य के हाथ में पूरी ताकत दे दो, ताकि बाद में राज्य एक दिन बेकाम होकर खत्म हो जाए। लेकिन जिस राज्य के हाथ में ताकत दे दी जाएगी वह मजबूत होगा, बिखरेगा नहीं, और जिन लोगों के हाथों में ताकत आएगी वे राज्य के बिखरने के लिए कभी भी पक्ष में नहीं हो सकते।

शक्ति हाथ में आ जाए तो उसे छोड़ने के लिए कोई भी राजी नहीं होता। इसलिए लोकतंत्र एक मात्र व्यवस्था है जिसके आधार पर किसी दिन राज्य बिखर सकता है। लेकिन तानाशाही, डिक्टेटरशिप से राज्य कभी भी नहीं बिखर सकता। लोकतंत्र से क्यों बिखर सकता है? क्योंकि ताकत हम सिर्फ लीज पर देते हैं। एक आदमी को पांच साल के लिए ताकत देते हैं और लोकतंत्र थोड़ा और विकसित हो, जैसा स्विट्जरलैंड में है तो

यह भी ताकत हाथ में रखते हैं कि अगर बीच मं हमारा दिल बदल जाए तो इस आदमी को दिल्ली से वापस बुला सकें। इसको पांच साल भी देने की जरूरत नहीं। अगर छह महीने बाद इसको मतदान करने वाले लोग अनुभव करते हैं कि यह आदमी बिगड़ रहा है, गलत रास्ते पर जा रहा है तो मतदान करनेवाले को इसे बुलाने का हक होना चाहिए कि छह महीने बाद उससे कह दे कि अब वापस आ जाओ।

लोकतंत्र लीज पर दी गई ताकत है, और तानाशाही परमानेंट लीज है। परमानेंट लीज से सावधान होने की जरूरत है। जिनके हाथ में इकट्ठी ताकत आ जाए उनसे सावधान होने की जरूरत है। स्टैलिना को निन्यानबे प्रतिशत वोट मिलते थे, लेकिन कोई भी नहीं पूछता कि विरोध में कौन खड़ा था उनके। विरोध में कोई भी नहीं खड़ा था! यह क्या खेल चल रहा है? विरोध में कोई खड़ा ही नहीं है और स्टैलिन के अखबार दुनिया भर में खबर कर रहे हैं कि निन्यानबे प्रतिशत वोट मिले! एक ही पेटी रखी गई है और वोट कंपलसरी है। जिसने नहीं डाला है उसकी जिंदगी खतरे में है। राज्य "विदर अवे" होगा?

समाजवाद कहता है कि हमें एक ऐसी दुनिया लानी है जिसमें राज्य न रह जाए। समाजवाद से नहीं आ सकती, क्योंकि समाजवाद कहता है कि पहले राज्य के हाथ में ताकत दो। फिर राज्य क्या स्युसाइड कर लेगा? फिर राज्य क्या आखिर में आत्महत्या कर लेगा? यह मनुष्य-जाति के पूरे अनुभव से पता नहीं चलता कि जिसके हाथ में ताकत हो वह ताकत हो और बढ़ाता चला जाए। नहीं, राज्य आत्मघात नहीं करेगा। हां, राज्य के पास पूरी ताकत हुई तो समाज की हत्या हो जाएगी।

समाजवाद कहता है कि हम समानता लाना चाहते हैं। लेकिन बड़ा मजा यह है, और इसीलिए समाजवाद कहता है, कि समानता लाने के लिए पहले स्वतंत्रता छीननी पड़ेगी। समानता लाने के लिए पहले स्वतंत्रता छीननी पड़ेगी, तो हम स्वतंत्रता छीन कर सब लोगों को समान कर देंगे। लेकिन ध्यान रहे, अगर स्वतंत्रता है तो समानता के लिए संघर्ष कर सकते हैं, लेकिन अगर स्वतंत्रता नहीं है तो समानता के लिए संघर्ष करने का भी कोई उपाय आदमी के पास नहीं रह जाता है।

आज एक मित्र मुझसे कह रहे थे कि मैं आपसे बैठकर विवाद कर रहा हूं। और हम यह तय कर रहे हैं कि सोशलिज्म ठीक है कि कैपिटलिज्म ठीक है। तो मैंने उनसे कहा कि यह विवाद तभी चल सकता है जब तक कैपिटलिज्म है। जिस दिन सोशलिज्म होगा उस दिन हम विवाद न कर सकेंगे। उस दिन फिर विवाद का कोई मौका नहीं है। यह जो हम बात कर पा रहे हैं आज कि समाजवाद उचित है या नहीं, पूंजीवाद उचित है या नहीं--यह बात समाजवादी दुनिया में संभव नहीं है।

रूस में सारे अखबार सरकारी हैं। एक भी गैर-सरकारी अखबार नहीं है। सारा पब्लिकेशन, सारा प्रकाशन सरकारी है। एक किताब गैर-सरकारी नहीं छप सकती है। आप क्या करेंगे? स्वतंत्रता एक बार छिन गई तो समानता की बात भी उठाने का मौका नहीं मिलेगा। इसलिए मैं मानता हूं, अगर समानता कभी दुनिया में लानी है तो स्वतंत्रता छीन कर नहीं, स्वतंत्रता को बढ़ा कर ही लाई जा सकती है।

समानता जो है वह अगर आज नहीं है तो उसका कारण पूंजीवाद नहीं है। समानता न होने का बुनियादी कारण बिल्कुल दूसरा है जिस पर समाजवादी पट्टी डालना चाहते हैं। समाज समान नहीं है, क्योंकि समाज के पास समान होने लायक संपत्ति नहीं है। समाज इसलिए असमान नहीं है कि पूंजीपति है और गरीब है। पूंजीपति और गरीब भी इसलिए है कि संपत्ति कम है। और संपत्ति इतनी ज्यादा नहीं है कि सब अमीर हो सकें। इसलिए असली सवाल राजनैतिक परिवर्तन का नहीं, असली सवाल मुल्क में संपत्ति को अधिक पैदा करने के उपाय

खोजने का है। लेकिन यह डेविएशन--भटकाव, जो समाजवादी कहता है... नहीं, असली सवाल यह नहीं है कि जिनके पास संपत्ति है उनसे हम उनके पास पहुंचाना चाहते हैं जिनके पास नहीं है।

असली सवाल यह नहीं है। असली सवाल यह है कि संपत्ति नहीं है। वह कैसे पैदा की जाए? संपत्ति पैदा करने की जो व्यवस्था पूंजीवाद के पास है वह समाजवाद के पास नहीं है। क्योंकि पूंजीवाद के पास व्यक्तिगत प्रेरणा की आधारभूत शिला है। एक-एक व्यक्ति उत्प्रेरित होता है संपत्ति कमाने को, प्रतिस्पर्धा को, प्रतियोगिता को। समाजवाद में न तो प्रतियोगिता का उपाय है, न प्रतिस्पर्धा का उपाय है, और न ही समाजवाद में कोई आदमी कम काम कर रहा है, न कोई आदमी ज्यादा काम कर रहा है कि इन दोनों के बीच तय करने का कोई उपाय है।

सरकारी दफ्तर की जो हालत है वही पूरे मुल्क की हालत बनाने की कोशिश है। सरकारी दफ्तर में जो क्लर्क छह घंटे काम कर रहा है वह बेवकूफ है और जो आदमी छह घंटे काम नहीं कर रहा है और विश्राम कर रहा है वह आदमी समझदार है। और दफ्तर में बीस समझदार हैं और एक नासमझ है और एक नासमझ को परेशान किए हुए हैं वे बीस कि तुम छह घंटे काम क्यों कर रहे हो। पूरे मुल्क को सरकारी दफ्तर बनाने की इच्छा है तो समाजवाद बड़ी उचित व्यवस्था है। सच तो यह है कि सरकारी

दफ्तर भी निजी व्यक्तियों के हाथों मे जाने चाहिए, अन्यथा इस मुल्क में उत्पादन नहीं हो सकता। इस मुल्क में श्रम करने को कोई राजी नहीं हो सकता।

मैं सरकारी कालेज में कुछ दिन था। मैं बहुत हैरान हुआ। सरकारी कालेज में कोई प्रोफेसर पढ़ाने को बिल्कुल उत्सुक नहीं है। गैर-सरकारी कालेज में वह बीस घंटे ले रहा है। उसका ही जो समानांतर शिक्षण गैर-सरकारी कालेज में है, वह बीस घंटे पढ़ा रहा है। क्योंकि उसके पढ़ाने पर ही उसकी नौकरी निर्भर हैं। सरकारी दफ्तर में नौकरी सिक्योर्ड है, पढ़ाने की कोई जरूरत नहीं है। पढ़ाना-वढ़ाना बेकार की बातें हैं। सरकारी कालेज में जो प्रोफेसर पढ़ाता है, वह असल में सरकारी प्रोफेसर होने के योग्य नहीं है। उसको पता नहीं कि वह गलती से गलत जगह आ गया है, यह ठीक जगह नहीं है।

जैसे ही कोई व्यवस्था तंत्र के हाथ में चली जाए वैसे ही अनुत्पादक हो जाती है--अनप्रोडक्टिव हो जाती है। और या फिर एक उपाय है। वह यह कि सरकारी प्रोफेसर के पीछे एक पुलिसवाला खड़ा रहे। और वह उसको बंदूक के हुद्दे देता रहे कि पढ़ाओ, तुम पढ़ाओ। लेकिन यह कितनी देर चलाइएगा? और वह पुलिसवाला भी सरकारी है, उसके पीछे एक पुलिसवाला और... नहीं तो वह सरकारी पुलिसवाला थोड़ी देर में हुद्दे देना बंद कर देगा। वह कहेगा, क्या दिन भर काम करते रहना है? इसलिए सरकार का तंत्र एकदम ही तंत्रबद्ध होता चला जाता है। एक के पीछे दूसरा खड़ा करना पड़ता है।

मैंने सुना है कि रवींद्रनाथ के घर में कोई सौ लोग थे परिवार में। और रविंद्रनाथ के पिता ऐसे आदमी थे कि उनके घर जो कोई मेहमान आ जाता तो फिर उसे लौटने न देते, कहते, यहीं रुक जाओ। शाही परिवार था। मेहमान रुक जाते तो वे घर के हिस्से हो जाते। मनों दूध आता था। रवींद्रनाथ के भाई के मन में यह खयाल उठा कि इस दूध की जांच-पड़ताल कुछ भी नहीं होती, पता नहीं कोई पानी मिला देता है या क्या करता है। मनों दूध घर में आता है, तो उन्होंने एक सुपरवाइजर रखा।

जिस दिन से सुपरवाइजर रखा तो उस दिन से पता चला कि दूध पतला हो गया। क्योंकि सुपरवाइजर का हिस्सा दूध में मिल गया। लेकिन भाई जिद्दी थे, सरकारी दिमाग के थे। पिता ने बहुत समझाया कि पहले जो दूध आ रहा था वह ठीक था। सुपरवाइजर को छुट्टी दो। इनकी तनख्वाह अलग और इसका हिस्सा भी पानी का

इसमें मिलना शुरू हो गया। लेकिन भाई जिद्दी थे, सरकारी विभाग के थे। उन्होंने कहा, इसके ऊपर एक ओवर सुपरवाइजर रखेंगे। एक और सुपरवाइजर रखेंगे। उन्होंने एक ओवर सुपरवाइजर रखा। पता चला कि दूध में पानी और आ गया है। मगर भाई जिद्दी थे। तब उन्होंने परिवार के एक संबंधी को सबके ऊपर नियुक्त किया। उस दिन एक मछली भी आ गई दूध में। क्योंकि फिर ऐसा रहा... कि दिखता है दूध में पानी नहीं मिलाया गया था, पानी में ही दूध डाला गया होगा, क्योंकि शेयर इतने हो गए!

सरकारी व्यवस्था यंत्र-व्यवस्था है। उसमें व्यक्ति की प्रेरणा की कोई जगह नहीं है और मनुष्य स्वभावतः आलसी है। मनुष्य स्वभावतः श्रम नहीं करना चाहता है। अगर हमारा मुल्क गरीब है...

एक मित्र ने पूछा है कि इतने गरीब हैं, इनकी जिम्मेवारी अमीरों पर नहीं है?

मैं आपसे कहता हूं, बिल्कुल नहीं है। इनकी जिम्मेवारी इन गरीबों पर ही है। इसको थोड़ा समझ लेना जरूरी होगा।

बड़े मजे की बात है, अगर एक गांव में दस हजार गरीब हों, और दो आदमी उनमें से मेहनत करके अमीर हो जाएं तो बाकी नौ हजार नौ सौ अट्ठान्नबे लोग कहेंगे कि इन दो आदमियों ने अमीर होकर हमको गरीब कर दिया। और कोई यह नहीं पूछता कि जब ये दो आदमी अमीर नहीं थे तब तुम अमीर थे? तुम्हारे पास कोई संपत्ति थी, जो इन्होंने चूस ली? नहीं, तो शोषण का मतलब क्या होता है? अगर हमारे पास था ही नहीं तो शोषण कैसे हो सकता है? शोषण उसका हो सकता है जो हमारे पास हो। अमीर के न होने पर हिंदुस्तान में गरीब नहीं था? हां, गरीबी का पता नहीं चलता था। क्योंकि पता चलने के लिए कुछ लोगों का अमीर हो जाना जरूरी है। तब गरीबी का बोध होना शुरू होता है।

बड़े आश्चर्य की बात है--जो लोग मेहनत करें, बुद्धि लगाएं, श्रम करें और अगर थोड़ी संपत्ति इकट्ठी कर लें, तो ऐसा लगता है कि इन लोगों ने अन्याय किया। और जो लोग बैठ कर हुक्का-चिलम पीते रहें और कोई संपत्ति पैदा न करें, तो लगता है इन बेचारों पर बड़ा अन्याय हो गया। सारा मुल्क काहिल और सुस्त है, लेकिन इस का हिलियत और सुस्ती को समझने की हमारी तैयारी नहीं। सारा मुल्क चुपचाप बैठा है, धन पैदा करने की न कोई इच्छा है, न कोई श्रम है, और न कोई बुद्धि है, न उस दिशा में कोई चेष्टा है। और फिर अगर दस आदमी धन कमा लें तो हम कहते हैं इन दस लोगों ने सारे मुल्क को गरीब कर दिया। अन्याय हो रहा है गरीब के साथ। गरीब के साथ अन्याय नहीं हो रहा है, गरीब अपने को गरीब रखने की व्यवस्था में जी रहा है।

मैं दो कबीलों के संबंध में पढ़ रहा था। अमरीका में रेड इंडियंस के एक पहाड़ पर दो कबीले हैं। एक कबीला धनी है और एक कबीला गरीब है। दोनों के पास एक सी जमीन है, एक सा हवामान है। और दोंनो के पास एक ही जाति के लोग हैं। फिर क्या मामला है, एक गरीब है और एक अमीर है? एक अजीब बात है। एक ही पहाड़ पर आधे हिस्से पर एक कबीला रहता है और आधे पर दूसरा कबीला रहता है। सबके साधन बराबर हैं। एक एकदम गरीब है सदा से और एक अमीर से अमीर होता चला गया।

जब उन दोनों कबीलों का अध्ययन किया गया तो बड़ी हैरानी का पता चला। वह जो कबीला अमीर है, और वह जो कबीला गरीब है उनकी जीवन-व्यवस्था भिन्न है। जो गरीब कबीला है उसकी व्यवस्था यह है कि जब एक खेत पर काम हो तो पूरा गांव समाजवादी ढंग से उस खेत पर काम करने जाता है। गांव के एक आदमी के खेत पर काम है तो सारा गांव करने जाएगा। सारे गांव के खेत बेकार पड़े रहेंगे। जब गांव के एक किसान के खेत का पूरा काम हो जाएगा तब दूसरे खेत की शुरुआत होगी। उस पर सारा गांव काम करेगा। यह समाजवादी ढंग है उनके काम करने का।

इसके दोहरे परिणाम हुए। एक तो बहुत सी जमीन अनुपयोगी रह जाती है, क्योंकि मौसम समाप्त हो जाता है। और गांव के लोग काम पूरा नहीं कर पाते। दूसरी यह कठिनाई पैदा हो गई कि छोटी जमीन पर इतने लोग इकट्ठे हो जाते हैं कि काम कम होता है, बातचीत ज्यादा होती है। तीसरा परिणाम यह हुआ है कि किसी आदमी को अपने खेत पर काम करने की जो व्यक्तिगत प्रेरणा चाहिए वह उस गांव में नहीं है। फिर जिनके खेत में काम नहीं हो पाता, वे उन खेतों की संपत्ति के लिए हकदार हो जाते हैं जिन पर उन्होंने काम किया है। स्वभावतः उनके खेत पर अगर काम नहीं हुआ है तो उन्होंने दूसरे के खेत पर काम किया है, तो गांव को संपत्ति समाजवादी ढंग से वितरित होती है।

वह कबीला आज तीन हजार साल से गरीब है और भिखमंगे की हालत में जीता है। पड़ोस के कबीले में हर आदमी अपने खेत में काम करता है। कोई समाजवादी व्यवस्था नहीं है, पूंजीवादी व्यवस्था है। वह कबीला अमीर होता चला गया। उस कबीले ने अभी-अभी कारें भी खरीदनी शुरू कर दीं। और बगल का कबीला अभी भी भीख मंगा रहा है। अगर बगल के कबीले ने अपनी समाजवादी नासमझी बंद नहीं की तो वह गरीब होता चला जाएगा।

असल में मतलब मेरा यह है कि पूंजीपति को जब हम कहते हैं कि उसने शोषण कर लिया तो हम कुछ बातें भूल जाते हैं। एक तो हम भूल जाते हैं कि उसने किसका शोषण किया? किसी के पास संपत्ति थी? उसकी इसने जेब काट ली, किसी का धन गड़ा हुआ इसने निकाल लिया? नहीं। इसने सिर्फ एक बुरा किया है कि किसी के पास श्रम था और किसी को दो रुपया देकर उसका श्रम खरीद लिया। यह नहीं खरीदता तो यह श्रम बेचता नहीं। श्रम गंगा की धार की तरह बह जाता है।

अगर आज मेरे पास श्रम की ताकत है आठ घंटे की और मैं उसका उपयोग न करूं तो कल मेरे पास दो रुपये नहीं बच जाएंगे, क्योंकि मैंने श्रम का उपयोग नहीं किया। अगर मैं अपने श्रम का उपयोग करूं तो कोई दो रुपये देने को तैयार है। जो मुझे दो रुपया देकर मेरे श्रम को पूंजी में कनवर्ट करता है उसको मैं कहता हूं, यह मेरा शोषण कर रहा है। तो आप शोषण मत करवाइए, आप बैठ जाइए अपने घर और अपने श्रम को तिजोरी मे बंद करके रखिए। फिर पता चलेगा कि शोषण हो रहा है कि क्या हो रहा है। शोषण नहीं हो रहा है।

पूंजीवाद शोषण की व्यवस्था नहीं है। पूंजीवाद एक व्यवस्था है, श्रम को पूंजी में कनवर्ट करने की। श्रम को पूंजी में रूपांतरित करने की व्यवस्था है। लेकिन जब आपका श्रम रूपांतरित होता है, जब आपको या मुझे दो रुपये मेरे श्रम के मिल जाते हैं तो मैं देखता हूं जिसने मुझे दो रुपये दिए उसके पास कार भी है, बंगला भी खड़ा होता जाता है। स्वभावतः तब मुझे खयाल आता है कि मेरा कुछ शोषण हो रहा है। और मेरे पास कुछ भी नहीं था जिसका शोषण हुआ।

हालांकि इस आदमी ने एक मकान और एक कार खरीदी और व्यवस्था बनाई, जिससे मुझे दो रुपये मिले हैं। ध्यान रहे, यह जो इतने गरीब लोग दिखाई पड़ रहे हैं, इन गरीबों की गरीबी के लिए पूंजीपति जिम्मेवार नहीं है। हां, इन गरीबों को जिंदा रखने के लिए जरूर पूंजीपति जिम्मेवार है। अगर वह कोई अन्याय है, तो अन्याय हुआ है!

आज से पांच सौ साल पहले दुनिया में दस बच्चे पैदा होते और नौ बच्चे मरते थे। क्योंकि दस बच्चों के लिए न भोजन था, न काम था, न जीवन था, न सुविधा थी। आज दस बच्चे पैदा होते हैं तो नौ बच्चे बचते हैं और एक बच्चा मरता है। यह जो नौ बच्चे बच रहे हैं यह पूंजीवाद ने श्रम को धन में रूपांतरित करने की जो व्यवस्था की है

उसका परिणाम है। लेकिन यह नौ बच्चे इकट्ठे हो जाते हैं और वे गरीब दिखाई पड़ते हैं और ये गरीब बच्चे चिल्लाते हैं कि हमारा शोषण कर लिया गया है।

पूंजीवाद शोषण की व्यवस्था नहीं है। और अगर हम पूंजीवाद सब तक पहुंचाना चाहते हैं कि वह गरीब तक पहुंच जाए तो इसका मतलब यह नहीं है कि पूंजीवाद की व्यवस्था को तोड़ना है। उसका मतलब है, व्यवस्था को बड़ा करें। उसका मतलब है, पूंजीवाद की व्यवस्था गांव-गांव, कोने-कोने तक फैल जाए। उसका मतलब यह नहीं है कि हिंदुस्तान के दस पूंजीपतियों को हम मिटा दें। उसका मतलब है, हिंदुस्तान में दस करोड़ पूंजीपति पैदा करें। उसका मतलब यह है कि पूंजी का विस्तार हो, पूंजीपतियों का विस्तार हो, उद्योगों का विस्तार हो।

और वह जो काहिल, सुस्त बैठा है, उस काहिल सुस्त को यह बातें न बताएं कि तेरा शोषण हो गया है। उससे हम कहें, तू काहिल है और सुस्त है पैदा नहीं कर रहा है। बड़ी अजीब बात है। मुल्क निरंतर अनुत्पादक, अनप्रोडक्टिव होता चला जाता है। क्योंकि वे जो नेता हैं समझानेवाले, वे कहते हैं, तू इसलिए थोड़े गरीब है कि तू कुछ नहीं कर रहा है। तू इसलिए गरीब है कि कोई तेरा शोषण कर रहा है। सारे मुल्क को अगर आप यह समझा देंगे कि शोषण हो रहा है इसलिए हम गरीब हैं तो आप श्रम के लिए मुल्क को तैयार नहीं कर सकते। और कैसी मूढ़तापूर्ण स्थिति है कि वे ही नेता चिल्ला कर कहेंगे कि श्रम करो। और वे ही नेता लोगों को समझाएंगे कि तुम्हारा शोषण हो रहा है। ये दोनों बातें विरोधी हैं। अगर मुल्क से श्रम करवाना है, उत्पादन करवाना है तो मुल्क को समझाना पड़ेगा कि तुम्हारी गरीबी के लिए तुम्हारे अतिरिक्त और कोई जिम्मेवार नहीं। तुम ही जिम्मेवार हो अपनी गरीबी के। और अगर तुम्हें अपनी गरीबी तोड़नी है तो तुम्हें श्रम में लगना पड़े, उत्पादक यात्रा करनी पड़े। लेकिन मुल्क के गरीब को बड़ा संतोष मिलता है यह जान कर कि उसकी कोई जिम्मेवारी नहीं है। वह बच्चे पैदा कर रहा है, भीड़ इकट्ठी कर रहा है, मुल्क को रोज गरीब कर रहा है। उसकी कोई जिम्मेवारी नहीं है, और हमको ऐसा लगता है कि बेचारा गरीब है। लेकिन यह बेचारा शब्द खतरनाक है। यह बेचारा शब्द ठीक नहीं है।

गरीब अपनी गरीबी के लिए जिम्मेवार है, यह उससे हमें कहना ही पड़ेगा। और गरीब अपनी सुस्ती और अपनी अनुत्पादकता के लिए जिम्मेवार है, यह भी उससे कहना पड़ेगा। और गरीब बच्चे पैदा करके, मुल्क को ज्यादा गरीब कर रहा है, यह भी हमें उससे कहना पड़ेगा।

लेकिन नेता नहीं कह सकता, क्योंकि नेता को वोट लेना है उस गरीब से। तो नेता उस गरीब को भड़का रहा है। और वह उससे कह रहा है कि तेरी गरीबी का कारण है, ये कुछ महल जो दिखाई पड़ रहे हैं। इनको गिरा दें तो सारा स्वर्ग उतर आएगा। ये महल गिर सकते हैं, इसमें बहुत कठिनाई नहीं है। ये महल बहुत ही अल्पमती लोगों के हैं। इनको गिराने का काम एक दिन में पूरा किया जा सकता है। इसलिए ज्यादा दिक्कत नहीं उठानी पड़ेगी।

यह संपत्ति जो थोड़ी सी कहीं दिखाई पड़ रही है, इसको वितरित किया जा सकता है। इसमें बहुत अड़चन नहीं है। यह बहुत छोटा सा अल्पमत है। और अगर बहुत तय करें तो हो जाएगा। लेकिन इससे बहुमत अमीर नहीं हो जाएगा। बल्कि बहुमत और गरीब हो जाएगा। और एक बहुत मजे की घटना घटेगी। वह घटना यह होगी कि रूस में क्रांति के पहले और बाद जैसा हुआ। क्रांति के पहले रूस के नेता कहते रहे कि तुम्हारी गरीबी का कारण अमीर है। क्रांति के बाद फिर गरीबी का क्या कारण था? अमीर तो खत्म हो गया। तब रूस का नेता कहने लगा कि श्रम करो, तुम श्रम नहीं करते हो, यह गरीबी का कारण है। यह बड़े मजे की और

बेईमानी की बातें हैं। पूंजीवाद था तो अमीर था गरीबी का कारण और समाजवाद आया तो श्रम नहीं करते! यह गरीबी का कारण है! श्रम नहीं करते हैं ते कोई भी व्यवस्था हो, गरीबी का कारण यही है। गरीबी का कारण शोषण नहीं है। गरीबी का कारण हमारे श्रम की काहिली, हमारी सुस्ती और आलस्य है। और हमारी अदभुत स्थिति है यह।

अधिकतम लोगों ने इस जगत में सदा आलस्य का जीवन बिताया है। थोड़े से लोगों ने जगत में श्रम किया है। जिन्होंने श्रम किया है उन्होंने आलसियों के लिए भी बहुत सी व्यवस्था दे दी है। लेकिन उसके लिए उनको धन्यवाद नहीं मिलता। उसके लिए उनको गाली मिलती है कि तुमने शोषण किया है।

जैसे उदाहरण के लिए मैं आपसे कहूं--आज साधारण सा मजदूर जैसे कपड़े पहने हुए है, वैसे कपड़े अशोक को उपलब्ध नहीं थे। आज साधारण सा मजदूर जैसे मकान में रह रहा है, जैसे कपड़े पहने हुए है, जिस सिनेमाघर में प्रवेश कर रहा है, जिस होटल में बैठ कर चाय पी रहा है, वह अकबर के लिए मुश्किल से उपलब्ध हो सकता था। साधारण आदमी के लिए इतनी सुविधाएं जुटा दी गयीं, उसके लिए, किसी के लिए कोई धन्यवाद नहीं है। लेकिन हां, साधारण आदमी के पास जो नहीं है, अभी उसके लिए क्रोध जरूर है कि किसी ने शोषण कर लिया है!

आज नहीं कल, हो सकता है कि समाजवादी यह भी कहें कि कुछ लोग बुद्धिमान हो जाते हैं। ये लोग कुछ लोगों को मूर्ख बना देते हैं, उनका शोषण कर लेते हैं। सच बात तो यह है कि कोई किसी की बुद्धि का शोषण करके बुद्धिमान नहीं बनता है। बल्कि जो बुद्धिमान बनता है वह अपने श्रम से बनता है और वह बुद्धिहीनों के लिए भी बहुत-कुछ जुटाता है जीवन भर। लेकिन उसको बुद्धिहीन धन्यवाद नहीं देंगे।

श्रम शक्ति है, और आलस्य? आलस्य दरिद्रता है। लेकिन मॉसेस, जनता बड़े पैमाने पर सदा से आलसी है। उसने कुछ नहीं किया। ये बिजली के पंखे चल रहे हैं। उसको जनता ने नहीं खोजा है। यह बिजली जल रही है, रात अंधेरे में प्रकाश हो रहा है। यह जनता ने नहीं खोजा है।

आपका जो मकान बन गया है सीमेंट-कांक्रीट का, वह जनता की खोज नहीं है। आपकी जिंदगी में बीमारियां कम हो गई हैं, वह जनता की खोज नहीं है। आपकी उम्र बढ़ गई है, यह जनता की खोज नहीं है। यह थोड़े से चूजन फ्यू, कुछ चुने हुए लोगों के श्रम का परिणाम है, लेकिन उनके लिए कोई धन्यवाद नहीं। और सारी जनता इकट्ठी होकर चिल्लाएगी कि हमारा शोषण कर लिया गया। बड़े आश्चर्य की बात है!

जनता ने क्या दिया है जगत को? जनता ने सिवाय लेने के और कुछ भी नहीं दिया है। लेकिन अब जनता सब चीजों की मालिक जरूर होना चाहती है। मैं नहीं कहता कि न हो मालिक, लेकिन ध्यान रहे, कहीं जनता की मालकियत उन लोगों को निराश न कर दे जो श्रम करते रहे हैं। अन्यथा उन लोगों की निराशा से जगत में जो भी थोड़ी सुगंध, संस्कृति और सभ्यता है उसका विसर्जन हो जाएगा।

अगर एक बार भी जनता मुल्क के ऊपर हावी हो गई--जनता तो क्या हावी होगी, जनता के नाम पर कुछ राजनीतिज्ञ हावी हो जाएंगे--अगर एक बार मनुष्य मुल्क के ऊपर... "मॉसेस" जिन्होंने जगत में कभी कुछ नहीं किया, जिनके पास इतिहास के लिए कोई दान नहीं है, अगर उनके हाथ में पूरी ताकत सौंप दी जाए, तो इसका अंततः परिणाम जो होगा, वह यही हो सकता है कि जो भी संस्कृति, जो भी सभ्यता, जो भी मनुष्य के मूल्य हैं--यह सब बिखर जाएं और चीजें नीचे चली जाएं।

लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि मैं यह कह रहा हूं कि जनता के हाथ में ताकत न हो। मैं मानता हूं कि जनता के हाथ में ताकत हो, लेकिन सारी सूचनाओं को समझते हुए ताकत हो और यह समझते हुए ताकत

हो कि जनता अपनी मुसीबतों के लिए खुद ही जिम्मेवार है। और जनता को अपनी मुसीबतें दूर करनी हैं तो श्रम के कदम उठाने पड़ेंगे। यह दूसरे पर दोष थोपने से काम नहीं चलेगा। लेकिन पुरानी आदतें हैं हमारी। पहले हम भाग्य पर दोष थोपते थे कि क्या करें, भाग्य ही ऐसा है इसलिए हम गरीब हैं। पहले हम भगवान पर दोष थोपते थे कि क्या करें, भगवान ने हमें गरीब बनाया। अब हम पूंजीपति को पकड़ बैठे हैं। अब उससे कहते हैं कि अब हम क्या करें? तुमने शोषण कर लिया है, इसलिए हम गरीब हैं। एक बात हम कभी नहीं कहते कि हम गरीब होने के ढंग से जी रहे हैं। इसीलिए हम गरीब हैं। यह भर चूक जाते हैं, बाकी हम सब खोज लेते हैं।

कर्म का सिद्धांत है कि हम गरीब हैं, क्योंकि हमारे कर्म पिछले जन्म में बुरे थे। हम गरीब हैं, क्योंकि भाग्य में लिखा हुआ है। विधाता ने लिख दिया है कि तुम गरीब रहोगे, क्योंकि हम गरीब हैं। क्योंकि भगवान ने चाहा कि हम गरीब हों। और अब हम कह रहे हैं कि हम गरीब हैं क्योंकि पूंजीपति ने शोषण कर लिया, लेकिन हजारों साल से यह जो आदमी गरीब है, यह अपने को जिम्मेवार बिल्कुल नहीं ठहराना चाहता है। ये सब नारे बदल देता है। जिम्मेवारी दूसरे पर टांगता चला जाता है। लेकिन जिम्मेवारी अपने ऊपर कभी नहीं लेता है।

मै आपसे कहना चाहता हूं कि इस देश के भाग्य का उदय न होगा। अगर इस देश के एक-एक आदमी ने यह न समझा कि गरीबी, दीनता और दुख के लिए हम जिम्मेवार हैं। यह जिम्मेवारी दूसरे पर टांगना खतरनाक है। खूंटियां बदलने से कुछ भी नहीं हो सकता। लेकिन राजनीतिज्ञ को सुविधा है। उसके लिए समाजवाद की बात बहुत पेइंग है, उसको वह बहुत लाभ पहुंचा सकती है।

एक मित्र ने पूछा है कि इंदिराजी जो समाजवाद लाना चाहती हैं, वह समाजवाद आएगा कि नहीं?

पहली तो बात यह है कि समाजवाद से इंदिरा जी का दूर का भी कोई संबंध नहीं है। इंदिरा जी का संबंध है समजवाद नाम से, शब्द से। इसलिए इंदिराजी भी समाजवाद की बात करती हैं। बड़ी हैरानी की बात है। मोरार जी भी वही बात करते हैं, जरा शब्द बदल कर। जनसंघी भी वही बात करते हैं, जरा शब्द बदलकर। सबको पता है कि गरीब जनता का अगर मत चाहिए तो गरीब जनता को फुसलाओ और उससे कहो कि तुम जिम्मेवार नहीं हो, जिम्मेवार कोई और है।

जनता से मत लेना हो तो समाजवाद अच्छा नारा है। लेकिन जनता को सिर्फ धोखे में डालने की बात है। समाजावाद इंदिरा जी लाएंगी या नहीं! "इंदिरा जी" या कोई भी इस देश में समाजवाद अभी नहीं ला सकता। क्योंकि यह देश अभी पूंजी पैदा नहीं कर पाया है। समाजवाद की संभावना सिर्फ एक है और वह यह है कि इतनी संपत्ति पैदा हो जाए कि मुल्क में किसी को गरीब रहने का कोई कारण न रह जाए। इतनी संपत्ति पैदा हो जाए, हवा-पानी की तरह कि मुल्क में किसी को गरीब रहने का कोई कारण न रह जाए। पूंजीवाद अगर ठीक से विकसित हो, परिपक्व हो, मेच्योर हो जाए तो अपने आप एक सामाजिक समानता आ जाएगी। उसे किसी "इंदिरा जी" को या किसी "और जी" को लाने की कोई जरूरत नहीं है।

यह संपत्ति कैसे पैदा हो?

एक मित्र ने पूछा कि आप यह कहते हैं कि समाजवाद से नहीं होगा तो यह कैसे हो?

... तो मैं दो-चार बातें आपसे कहना चाहूंगा। पहली तो बात यह है, वे मुल्क जो यंत्र पूर्व के जीवन को अभी तक संभाले हुए हैं, संपत्ति पैदा नहीं कर सकते। हम अभी भी प्रो-इंडस्ट्रियल हैं। हम अभी भी औद्योगिक क्रांति से गुजरे नहीं हैं। यूरोप भी गरीब था, अमरीका भी गरीबी था। यह जो अमीरी आई, यह जो संपत्ति आई, यह औद्योगिक क्रांति का परिणाम है। औद्योगिक क्रांति का क्या मतलब? औद्योगिक क्रांति का मतलब है, मनुष्य

के श्रम की सीमाएं है। मशीन के श्रम की कोई सीमा नहीं है। अगर आप मनुष्य के श्रम पर ही निर्भर रहेंगे संपत्ति पैदा करने को, बहुत ज्यादा संपत्ति आप पैदा नही कर सकते। मनुष्य के श्रम की सीमा है।

मशीन जब तक संपत्ति पैदा न करे, तब तक कोई मुल्क अमीर नहीं हो सकता। मनुष्य भरोसे के योग्य नहीं है। मनुष्य गरीब होने के लिए पर्याप्त है। मनुष्य अमीर होने के लिए पर्याप्त नहीं है। जरा लौट कर पीछे इतिहास देखें तो आपको खयाल आ जाएगा। जब तक, एक जमाना था कि आदमी सिर्फ वृक्षों के फलों को चुनकर भोजन कमाता था, तब संपत्ति बिल्कुल पैदा नहीं हो सकती थी। क्योंकि भोजन के लायक फल मिल जाए, शिकार मिल जाए, वही बहुत था। अकसर भूखा रहना पड़ता था और जब मिल जाता तो आदमी ज्यादा खा लेता और जब नहीं मिलता तो भूखा रहता। और बड़ी जमीन की जरूरत पड़ती थी। एक छोटे से कबीले के लिए कम से कम सौ वर्गमील का जंगल चाहिए था, शिकार के लिए, फल के लिए।

इसलिए दुनिया की आबादी दो करोड़ से ज्यादा नहीं हो सकी। जीसस के दो हजार वर्ष पहले तक सारी दुनिया की आबादी दो करोड़ से ज्यादा न हो सकी--हो नहीं सकती थी। और फिर भी आदमी निपट दीनता में जीता था, लेकिन उस दीनता का उसे कोई पता नहीं था, क्योंकि दीनता का पता हमेशा तुलना से चलता है। जब हमारे बीच कोई अमीर हो जाए तब हमें पता चलता है कि हम गरीब हैं, नहीं तो हमें पता नहीं चलता। अगर हम सब काने ही पैदा हों तो हमें कभी पता नहीं चलेगा कि हम काने हैं। एक आदमी दो आंख वाला पैदा हो जाए तो हम उसकी एक आंख का आपरेशन कर देंगे, या फिर हमको काने होने का दुख शुरू हो जाएगा। दो ही उपाय बचते हैं।

लेकिन जब आदमी ने बीज बोकर खेती करना शुरू किया तो उसके पास थोड़ी सी संपत्ति का आना शुरू हुआ। क्योंकि वह प्रकृति पर निर्भर नहीं रहा। उसने प्रकृति का उपयोग करना शुरू कर दिया। लेकिन फिर भी जमीन से पैदावार उतनी ही हुई जितने से आदमी पेट भर सकता था और तन ढंक सकता था।

दुनिया की आबादी आज से पांच सौ साल पहले तक बहुत ज्यादा नहीं बढ़ सकी। फिर इसके बाद आदमी ने अपने को श्रम से मुक्त करना शुरू किया। और अपने श्रम की जगह वह जानवरों को लाया। और जब अपने श्रम की जगह बैल और घोड़े को लाया तो उससे काम बहुत बढ़ गया और थोड़ी संपत्ति अर्जित होनी शुरू हुई। बैल, घोड़े और जानवरों ने मिल कर संपत्ति पैदा की और फ्यूडल, सामंत युग पैदा हुए। लेकिन जानवरों की भी सीमा है, काम करने की। उनसे अत्यंत संपत्ति पैदा नहीं की जा सकती। तो मशीन आई, और मशीन की कोई सीमा नहीं और अब जो आटोमेटिक मशीन आ रही है, स्वचालित उसकी तो कोई सीमा ही नहीं है।

अगर इस देश को अमीर होना है, तो राजनीतिक व्यवस्था बदलने से नहीं होगा। इस मुल्क की यांत्रिक व्यवस्था बदलने से ही यह मुल्क संपत्ति पैदा कर पाएगा। और कोई उपाय नहीं है। तो इस मुल्क को दो बातें करनी जरूरी हैं। एक तो हम जितनी शीघ्रता से, जितनी शक्ति लगाकर मुल्क को यांत्रिक क्रांति से गुजार सकें, एक टेक्नालॉजिकल रेवोल्यूशन से गुजारें, लेकिन कौन गुजारे? मुल्क का नेता मुल्क को सोशलिस्टिक रेवोल्यूशन से गुजार रहा है। वह समाजवादी क्रांति से गुजार रहा है। मुल्क के धर्मगुरु मुल्क को राम-राज्य की क्रांति से गुजार रहे हैं और मुल्क में लड़के मुल्क को उपद्रव में डाल रहे हैं। उनका उपद्रव ही उनकी क्रांति है।

नेता को मतलब है चुनाव से, वह समाजवादी क्रांति की बातें कर रहा है। साधु को मतलब है अपने महंत के पद से। शंकराचार्य को मतलब है अपने पीठ से। वे अपने रामराज्य, गीता, रामायण की बातें दोहराए चले जा रहे हैं। लड़कों को कुछ मतलब नहीं अपनी चीज से। उन्हें कोई आशा भी नहीं दीखती भविष्य में। वे उपद्रव करने में लगे हुए हैं, उनके उपद्रव का कोई भी नाम हो। वे उपद्रव करने में लगे हुए हैं।

इस मुल्क को औद्योगिक क्रांति से कौन गुजारे? जो गुजार सकता है उसके हम सब खिलाफ हैं। इस मुल्क में जो थोड़ा-बहुत उद्योग लाया गया है, वह इस मुल्क के पूंजीपतियों ने लाया है। जो इस मुल्क को पूंजीपति और बड़ी औद्योगिक क्रांति से गुजार सकता है उसको मिटाने में हम लगे हैं। हम इस कोशिश में हैं कि वह बिल्कुल न बचे। तब इस मुल्क में सिवाय दुर्भाग्य के कुछ भी न बचेगा। इस मुल्क के पूंजीपति को हमें राजी करना पड़ेगा। इस मुल्क को औद्योगिक क्रांति में प्रवेश करवाने के लिए उनकी शक्तियों का उपयोग भी करना पड़ेगा। लेकिन अभी हम न कर पाएंगे, क्योंकि हम दुश्मन की तरह खड़े हो गए हैं--पूंजीपति को हमें मिटाना है। और अगर पूंजीपति एक लाख कमाए तो उस पर टैक्स लगेगा, दो लाख कमाए तो और ज्यादा लगेगा, तीन लाख कमाए तो और ज्यादा लगेगा। पांच लाख कमाए तो जितना कमाए उतना टैक्स लग जाएगा। दस लाख कमाए तो बेकार मेहनत कर रहा है। तो पूंजीपति किसलिए मेहनत करे?

इस मुल्क की टैक्सेशन की पूरी व्यवस्था, इस मुल्क को औद्योगिक होने से रोक रही है। मेरी समझ में जो आदमी जितना कमाए उतना कम टैक्स होता जाना चाहिए और एक सीमा के बाद टैक्स होना ही नहीं चाहिए। एक आदमी दस लाख के ऊपर कमाए तो उसे टैक्स-मुक्त और करोड़ के ऊपर कमाए तो पूरे मुल्क को उसे और कुछ थोड़ी प्रशंसा देनी चाहिए। लेकिन हम अजीब काम कर रहे हैं। लेकिन जो इस मुल्क को इंडस्ट्रियलाइज्ड कर सकते हैं, उनको हम तोड़ रहे हैं। और जो इस मुल्क को कभी का भूखा रखे हुए हैं, गरीब बैठे हुए हैं उनको हम बढ़ावा दे रहे हैं। इससे नुकसान होगा।

एक तो जरूरत है कि तत्काल, जितनी शीघ्रता से हो सके उतना यांत्रिक क्रांति से गुजरे। इस यांत्रिक क्रांति के लिए हिंदुस्तान के उद्योगपति का हिंदुस्तान के लिए पूरा उपयोग करने की जरूरत है। लेकिन उद्योगपति घबराया हुआ है, डरा हुआ है। उसका डर स्वाभाविक है। उसे लग रहा है कि दो-चार-पांच साल की उसकी जिंदगी है। वह खत्म होने के करीब है। तो उद्योगपति यूरोप के बैंकों में अपना पैसा जमा कर रहा है--करेगा। हम करवा रहे हैं उससे जमा। उद्योगपति पश्चिम में भागने की कोशिश में पड़ा हुआ है। कलकत्ते का उद्योगपति बंगाल छोड़ने की कोशिश कर रहा है। बंबई का उद्योगपति आज नहीं कल बंबई से भागने की कोशिश करेगा। परसों वह पाएगा, हिंदुस्तान में भागने की कोई योग्य जगह नहीं रही। हिंदुस्तान के बाहर भागने के सिवाय कोई उपाय नहीं है।

हम जो इस मुल्क को संपत्ति की व्यवस्था में गतिमान कर सकते हैं, उनके साथ दुश्मन की तरह व्यवहार कर रहे हैं, यह अत्यंत नासमझी से भरा हुआ कृत्य है, जो कोई भी गरीब मुल्क कर सकता है।

दूसरी बात, मुल्क की सारी की सारी जनता इसके किसी बोध में ही नहीं है, उसके दिल में इस बात की कोई कांशियंस, कोई चेतना ही नहीं है, कि कितनी संख्या में यह मुल्क झेल सकता है। अगर हम औद्योगिक क्रांति भी कर लें तो यूरोप औद्योगिक क्रांति के बाद समृद्ध हो गया, क्योंकि उसकी संख्या बहुत कम थी।

आज हमारी संख्या दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ रही है। हम पचास-पचपन करोड़ लोग जब तक हम इस मुल्क को दस साल में औद्योगिक रूप से थोड़ा बहुत आगे बढ़ाएं तब तक ये बीस करोड़ लोग पैदा कर देंगे। तब सवाल फिर वहीं का वहीं खड़ा रह जाएगा। हमारा सारा औद्योगिक विकास ठप्प कर देंगे। इसलिए दूसरी बात है कि जनता के एक-एक आदमी को हम इस बात के लिए तैयार करें कि एक भी नये बच्चे को लाना खतरे से खाली नहीं है और इसके लिए हम सारा इंतजाम करें। इंतजाम सब हमारा उलटा है। इंतजाम हमारा यह है कि जिसके दो बच्चे हैं उसको इनकमटैक्स में उतनी छूट नहीं, जिसको चार हैं उनको ज्यादा छूट है। यह बहुत मजे की

बात है। जिसके चार बच्चे हैं उस पर दुगुना इनकमटैक्स होना चाहिए। जिसको बिल्कुल बच्चे नहीं है उस पर इनकमटैक्स ज्यादा है और बैचलर पर और भी ज्यादा है। बैचलर पर बिल्कुल नहीं होना चाहिए।

जो आदमी अविवाहित हैं, उसको तो हमें देर तक अविवाहित रखने का उपाय करना चाहिए। उसको नौकरी पहले मिलनी चाहिए विवाहित के बजाय। उस पर टैक्स नहीं होना चाहिए। उसको सब तरह की जो भी सुविधाएं मिल सकती हैं, मिलनी चाहिए।

मुल्क में ज्यादा देर तक लड़के और लड़कियां अविवाहित रहें, इसका हमें तीव्रता से प्रचार करना चाहिए। जो लोग विवाहित हैं वे अगर बिना बच्चे पैदा किए विवाहित रहें तो उन्हें हमें सुविधाएं देनी चाहिए। बच्चों के साथ असुविधाएं बढ़ानी चाहिए। जैसे बच्चे बढ़ें, वैसे असुविधाएं बढ़ानी चाहिए। लेकिन हम सोचते हैं उलटा। हम सोचते हैं उलटे कि जिसके पास बच्चे हैं वह बेचारा है। लेकिन किसने कहा उस बेचारे से कि पांच बच्चे पैदा करे। बच्चे वह पैदा करेगा, परेशान यह पूरा मुल्क होगा। बच्चों को रोकना पड़ेगा सख्ती से। कुछ खतरनाक घटनाएं घट गई हैं। बड़ा खतरा यह हो गया, हमने मृत्यु-दर कम कर ली है पश्चिम के विज्ञान का उपयोग करके। जहां तक मृत्यु का संबंध है, हमने पश्चिम के विज्ञान का उपयोग कर लिया। और जब हमारा महात्मा भी मरता है तो एलोपैथी की दवा लेने से इनकार नहीं करता। वह यह नहीं कहता कि भगवान मार रहा है तो हम एलोपैथी से न बचेंगे, हम तो मरेंगे। वह मजे से एलोपैथी की दवा लेता है।

पश्चिम की मृत्यु को रोकने की जो-जो खोजें थीं, हमने उन सबका उपयोग कर लिया। लेकिन पश्चिम ने जन्म रोकने की जो-जो खोजें कीं उनके मामले में हम खिलाफ हैं। यह मामला ऐसा है कि जन्म के संबंध में हम भारतीय हैं। और मरने के संबंध में हम पश्चिमी हैं। यह नहीं चलेगा।

अगर आपको मृत्यु की दर कम करनी है तो जन्म-दर उसी मात्रा में कम करनी पड़ेगी और अगर आपको जन्म-दर नहीं कम करनी है तो आपको उसी मात्रा में मरने के लिए तैयार रहना चाहिए, जैसा दवाइयों के पहले हम मरते थे। यह सीधा तर्क है। लेकिन महात्मा मुल्क में लोगों को समझाता है कि बच्चे तो भगवान देता है। लेकिन वह महात्मा लोगों को नहीं समझाता कि महामारी और प्लेग भी भगवान भेजता है, आदमी न रोके। तो जब प्लेग आती है, अकाल आता है, बाढ़ आती है, तब महात्मा सेवा के लिए पहुंच जाता है। वह कहता है कि बाढ़ आ गई, हम सेवा करेंगे वहां जाकर। वह कहता है कि बिहार में अकाल पड़ गया तो हम लोगों को मरने न देंगे। तब वह नहीं कहता कि भगवान अकाल भेज रहा है बिहार में, बिहार के लोगों शांति से मर जाओ, कि सूरत में बाढ़ आ गई है तो सूरत के लागो शांति से बाढ़ में बह जाओ--यह भगवान भेज रहा है।

लेकिन वह महात्मा चालाक है। मरते वक्त लोगों को बचाने पहुंच जाता है और जब यही लोग बच्चे पैदा करते हैं तो महात्मा कहता है, बर्थ-कंट्रोल? बर्थ-कंट्रोल जीवन के नियम के विपरीत है! यह तो परमात्मा के खिलाफ है। यह नहीं चलेगा। मृत्यु-दर हमने कम कर ली, जन्म-दर हमें कम करनी पड़ेगी।

इस जन्म-दर को कम करना हमारा सबसे बड़ा सवाल है। यह बड़े मजे की बात है कि आज दुनिया में जो सबसे बड़े सवाल है वह सबसे छोटी चीजों से पैदा हो रहे हैं। तीन बड़े सवाल हैं इस समय दुनिया में, जो सबसे छोटी चीजों से पैदा हो रहे हैं।

एटम--बड़े से बड़ा सवाल है कि कहीं अणु-युद्ध न हो जाए, और अणु छोटी से छोटी चीज है।

वीर्य-अणु--वह सबसे बड़ा सवाल है कि वीर्य-अणु एक्सप्लोजन कर रहा है जनता का। वह बढ़ाए चला जा रहा है। वह बहुत छोटी सी चीज है। वह वीर्य-अणु दुनिया को मार डाल सकता है।

और तीसरा है, रंग-अणु। काले आदमी की चमड़ी में पिगमेंट होता है काले रंग का। सफेद आदमी की चमड़ी में सफेद रंग का पिगमेंट होता है। दो तीन आने के रंग का फर्क होता है कुल जमा। लेकिन नीग्रो और अमरीकी लड़ रहा है। काला और गोरा लड़ रहा है, पीला और सफेद लड़ रहा है और इसमें दो-तीन आने से ज्यादा फर्क नहीं है। दो-तीन आना भी मैं कह रहा हूं फुटकर बिक्री में खरीदें तो। थोक खरीदें तो इतना भी फर्क नहीं है।

शरीर की चमड़ी में थोड़े से रंग के अणुओं का फर्क है। तीन सवाल हैं इस समय--रंग-अणु, वीर्य-अणु और पदार्थ-अणु। और ये तीन छोटी-सी चीजें आज पूरी मनुष्यता को परेशान किए हुए हैं। इनमें सबसे खतरनाक वीर्य-अणु सिद्ध हो रहा है क्योंकि वह सबके पास है। एटम-अणु तो सबके पास नहीं है। एटामिक एनर्जी बनानी हो तो बड़े उपद्रव की जरूरत है। लेकिन यह जो वीर्य-अणु की एनर्जी है यह सबको मुफ्त मिली है। और एक-एक आदमी को इतनी मिली है कि जिसका कोई हिसाब नहीं। एक साधारण स्वास्थ्य का आदमी अपनी जिंदगी मे चार हजार संभोग कर सकता है। और एक संभोग में एक साधारण आदमी के वीर्य-अणु इतने निकलते हैं कि एक करोड़ बच्चे पैदा हो सकें। और अगर पूरी वैज्ञानिक सुविधा मिले--जो अब तक नहीं मिल सकी, क्योंकि स्त्री इसमें साथ नहीं देती, वह पुरुषों का बहुत मामलों में साथ नहीं देती, वह साल में एक ही बच्चे को ग्रहण कर पाती है। लेकिन पुरुष साल में करोड़ों बच्चे पैदा कर सकता है, एक पुरुष। इस समय पृथ्वी पर जो आबादी है साढ़े तीन अरब, यह एक आदमी के वीर्य-अणुओं से पैदा हो सकती है, अगर उसके सारे वीर्य-अणुओं का उपयोग हो जाए। इतनी मुफ्त मिली शक्ति सबके पास हो तो इसका सबसे बड़ा खतरा उसी से है।

हिंदुस्तान के सामने दो सवाल हैं। एक कि वह जल्दी से जल्दी औद्योगिक, टेक्नालॉजिकल क्रांति से गुजर जाए और जल्दी से जल्दी बच्चों के दरवाजे पर रोक लगाए और बच्चों को न आने दे, अन्यथा खतरा है। अन्यथा खतरा यह है कि अगर बच्चे बहुत बड़ी तादाद में आए ते दो उपाय हैं। या तो हमें मृत्यु-दर फिर से बढ़ाने के लिए कृत्रिम साधन खोजने पड़ें, जो कि बहुत दुखद मालूम पड़ता है--किन्हीं जिंदा लोगों को मरने के लिए राजी करना पड़े। और दूसरा उपाय महामारियों को हमें सुविधा देनी पड़े। वे हमसे बिना पूछे आ जाएंगी, संख्या एक सीमा के बाहर जाएगी तो महामारियां आ जाएंगी। बीमारियां फैल जाएंगी। और लोग मरेंगे बड़ी तादाद में। इसके पहले कि लोग बहुत करुण स्थिती में मरें, उचित है कि हम नये बच्चों पर रोक लगाएं और यह कोई अमीर आपको नहीं कह रहा है कि आप बच्चे पैदा करें। लेकिन बच्चे पैदा करने पर सख्ती से नियंत्रण करने की जरूरत है।

सरकार को जो करने योग्य है वह न करके बेकार की बातों में हमारे मुल्क की सरकार पड़ती है। सख्ती का मेरा मतलब यह है कि हिंदुस्तान में जो भी आदमी जेल जाए, वह आदमी जेल के बाहर बच्चे पैदा करने की ताकत लेकर वापस नहीं लौटना चाहिए। यह दंड का अनिवार्य हिस्सा होना चाहिए। हिंदुस्तान में दो बच्चे के बाद जो आदमी तीसरा बच्चा पैदा करे उस पर बहुत असुविधाएं थोप देनी चाहिए। उसकी फीस दुगनी हो जानी चाहिए, टैक्स ज्यादा होना चाहिए, उस पर सारी मुसीबतें आ जानी चाहिए।

जैसे ही बच्चे आर्थिक रूप से बोझ होंगे तभी हम उन्हें रोकेंगे, लेकिन उसमें एक कठिनाई आएगी। गरीब के लिए बच्चे आर्थिक रूप से सुविधाएं हैं, बोझ नहीं हैं। वे सिर्फ अमीर के लिए बोझ हैं। लेकिन बड़ी अघटनीय घटना घटती है। और वह यह है कि जैसे-जैसे आदमी समृद्ध होते जाते हैं, वैसे-वैसे अपने आप बच्चे कम करते जाते हैं। क्योंकि अमीर आदमी के लिए बच्चा उसकी संपत्ति का विभाजक होकर आता है। अगर एक आदमी के पास करोड़ रुपये हैं और वह दस बच्चे पैदा कर ले तो उसके बच्चे लखपति रह जाएंगे, करोड़पति नहीं रह जाएंगे। लेकिन एक गरीब जिसके पास कुछ भी नहीं है, अगर वह दस बच्चे पैदा कर ले तो दस बच्चों की आमदनी शुरू हो

जाएगी। दस बच्चे कुछ कमा लाएंगे, गाय, बैल, को ही चराएंगे, कुछ तो काम कर ही लेंगे। अभी गरीब के लिए बच्चों का बढ़ना आर्थिक रूप से उपयोगी है।

पर क्या गरीब के पास कोई सुविधा है कि वह मुल्क की संपत्ति बढ़ाने में अपने बच्चों को प्रेरित कर सके? क्या गरीब के पास पूंजी पैदा करने की कोई क्षमता है? अगर उसके पास वह क्षमता होती तो वह गरीब न होता। उसे भी अपने बच्चों को पूंजीपतियों की सजाई इस दुनिया पर आधारित रखना पड़ेगा।

नहीं, यह नहीं चलेगा। श्रम को पूंजी में रूपांतरित करने वाले पूंजीपति को हमें राजी करना पड़ेगा। उसे प्रेरणा देनी पड़ेगी, स्वतंत्रता व सुविधाएं देनी पड़ेंगी कि वह ज्यादा से ज्यादा पूंजी पैदा करे और मुल्क को जल्द से जल्द औद्योगिक क्रांति से गुजारे।

दूसरे, मुल्क में विस्फोटित जनसंख्या पर आगे सख्ती से पूरी रोक लगानी पड़ेगी। उसके सारे इंतजाम हमें करने पड़ेंगे। तो ही इस मुल्क का कोई भविष्य है, अन्यथा हमारे सामने अंधकार के गर्त के सिवाय कुछ भी नहीं।

और भी प्रश्न रह गए हैं जिनकी चर्चा हम अगली बैठक में करेंगे।

मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, इससे बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे प्रभु को प्रमाण करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

तीसरा प्रवचन

पूंजीवादः ज्यादा मानवीय व्यवस्था

मेरे प्रिय आत्मन्!

बहुत से सवाल पूछे गए हैं।

एक मित्र ने पूछा है कि समाजवाद परार्थवाद, अलटुइस्टिक व्यवस्था है। पूंजीवाद स्वार्थवादी, सेलफिश व्यवस्था है। और आप परार्थवादी व्यवस्था का विरोध करते हैं और स्वार्थ की व्यवस्था का समर्थन करते हैं। इसका क्या कारण है?

सबसे पहली बात तो यह ध्यान में लेने जैसी है कि जगत में न कोई परार्थवादी कभी पैदा हुआ है, न हो सकता है। इसका कोई उपाय ही नहीं है। परार्थवाद असंभावना है। और इस सत्य को जितना ठीक से समझा जा सके उतना पाखंड से, हिपोक्रेसी से बचा जा सकता है। परार्थवाद के नाम पर सिवाय पाखंड के और कुछ भी नहीं है। असल में मनुष्य की चेतना मूलतः स्वार्थी है और उचित भी है, अनुचित भी नहीं है। बुरा भी नहीं है, स्वाभाविक भी है। हां, स्वार्थ बहुत तल के हो सकते हैं। तीन तरह के स्वार्थ हो सकते हैं। श्रेष्ठतम स्वार्थ, जिसमें मेरे स्वार्थ में आपके स्वार्थ को भी गति मिलती हो। यह भी श्रेष्ठतम इसीलिए है कि आपके स्वार्थ को भी गति मिलती है, और कोई कारण नहीं है। मध्यम स्वार्थ, जिसमें मेरा स्वार्थ तो हल होता है लेकिन किसी और के स्वार्थ को न तो कोई फायदा होता है, न कोई हानि होती है। वह मध्यम इसलिए है कि दूसरे के प्रति पूर्ण उपेक्षा है। न हानि है, न लाभ है। निकृष्ट स्वार्थ वह है, जिसमें मेरा स्वार्थ आपके स्वार्थ को नुकसान पहुंचाता है। वह निकृष्ट इसीलिए है कि आपके स्वार्थ को नुकसान पहुंचाता है। और कोई कारण नहीं है।

तीन तरह के स्वार्थ हैं जगत में। और जगत का सारा विकास निकृष्ट स्वार्थ से श्रेष्ठतम स्वार्थ की तरफ है। जगत का विकास स्वार्थ से परार्थ की तरफ न है और न हो सकता है। लेकिन, हम कुछ ऐसी घटनाएं सोचते रहते हैं जो लगती हैं बिल्कुल परार्थ हैं। एक आदमी नदी में डूब रहा है और मैं किनारे से गुजर रहा हूं। मैं उसे अपनी जिंदगी को जोखिम में डाल कर नदी में कूद कर बचाता हूं तो आप मुझसे कह सकते हैं कि यह तो बिल्कुल परार्थ है, इसमें आपका क्या स्वार्थ? लेकिन नहीं, आप बहुत गहरे नहीं देख रहे हैं और शब्दों की बहुत ऊपरी पकड़ में हैं। जब मैं एक आदमी को नदी में डूबते देखता हूं तब तत्काल मेरे सामने जो सवाल होता है वह उस आदमी को बचाने का नहीं होता। तत्काल वह सवाल यह होता है कि क्या मैं उस आदमी को डूबने का दुख झेल सकता हूं। वह असली सवाल बहुत गहरे स्वार्थ का है।

जो इस दुख को झेल सकता है वह निकल जाएगा नदी के किनारे से, वह फिकर नहीं करेगा उस आदमी की। लेकिन जो इस दुख को नहीं झेल सकता वह उस आदमी को बचाता है। वह उस आदमी को नहीं बचा रहा है। वह उस आदमी को डूबते हुए देखने के अपने दुख से छुटकारा पा रहा है और कोई कारण नहीं है और जब मैं उस आदमी को बचा कर बाहर ले आऊं उस नदी के किनारे, तो मुझे जो सुख मिलता है वह सुख उस आदमी को बचाने का नहीं। वह सुख मुझे जो उस आदमी को डूबते हुए देखने की पीड़ा थी उससे मुक्ति का है। और दूसरा सुख मैंने उसे बचाया है, उसका है। वह आदमी बच गया, यह दूसरी बात है, यह सेकंड्री है, यह गौण है। आज तक दुनिया में कोई आदमी अपने स्वार्थ के बाहर नहीं जा सका।

अगर बुद्ध गांव-गांव घूमते हैं लोगों को समझाने, तो इस भ्रांति में पड़ने की कोई जरूरत नहीं कि वे लोगों के लिए परार्थ के लिए घूम रहे हैं। यह बुद्ध का आनंद है कि वे लोगों के लिए घूम रहे हैं और समझा रहे हैं। जब रास्ते के किनारे एक फूल खिलता है तो आप इस भ्रांति में मत पड़ना कि वह रास्ते पर चलनेवाले लागों को सुगंध देने के लिए खिलता है। यह फूल का आनंद है कि वह खिलता है। रास्ते पर चलनेवालों को सुगंध मिल जाती है, यह दूसरी बात है। यह प्रयोजन नहीं है फूल खिलने का। और चांद अगर आकाश में निकलता है तो आप यह मत सोच लेना कि आप प्रेम का गीत गा सके इसलिए निकलता है। आप गा लेते हैं, यह बात दूसरी है।

जिंदगी का मूल स्वर स्वार्थ है। स्वार्थ शब्द को हमने बहुत गंदा कर रखा है। वैसे शब्द सुंदर है। स्वार्थ का मतलब होता हैः "स्व" के अर्थ में। अगर अच्छा शब्द कहें तो आत्म-अर्थ कहें, आत्मा के हित में, अपने हित में। स्वाभाविक है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने हित में जीए। हां, दृष्टि सिर्फ इतनी होनी चाहिए कि उसका हित धीरे-धीरे सबके हित को समाहित कर ले, यह श्रेष्ठतम होगा। उसका हित सबके विरोध में पड़ जाए यह निकृष्टतम होगा। लेकिन ये दोनों आदमी स्वार्थी हैं, यह मैं स्पष्ट करना चाहता हूं। इसमें परार्थी कोई भी नहीं है।

फिर परार्थी कौन है? जिनकी हम परोपकारियों में, परार्थियों में गणना करते हैं और जिनको हम महात्मा, साधु संत कह कर पूजते हैं, ये कौन लोग हैं, जो अपने किसी गहरे स्वार्थ के गहरे आनंद को पूरा करते हैं। लेकिन परार्थ कर रहे हैं--यह अहंकार भी पूरा कर रहे हैं। कोई परार्थ नहीं कर रहा है। अगर भगतसिंह को इस देश के लिए मरने में आनंद है तो भगतसिंह मर रहा है। यह भगत सिंह का अपना आनंद है। इस देश की लड़ाई आगे बढ़ती है, यह गौण है। और गांधी अगर इस देश की सेवा कर रहे हैं तो यह उनका अपना आनंद है। इसमें परार्थ कहीं भी नहीं है, लेकिन यह श्रेष्ठतम स्वार्थ है और श्रेष्ठतम स्वार्थ होना चाहिए।

मैं पूंजीवादी व्यवस्था का समर्थक हूं, क्योंकि वह मानवीय स्वभाव के अनुकूल है। पूंजीवादी व्यवस्था स्वार्थी व्यवस्था है। समाजवादी व्यवस्था दावा करती है परार्थ का, इसलिए पाखंडी व्यवस्था है। यह मनुष्य के स्वभाव के अनुकूल नहीं है और दावा ही परार्थ का है, परार्थ हो नहीं सकता है। स्वार्थ वहां भी होगा। स्वार्थ वहां भी हो रहा है।

इस बात को अगर हम ठीक से समझ लें कि स्वार्थी होना मनुष्य का महत्तम, गहरे से गहरा मनोभाव है, उसकी गहरी से गहरी प्रकृति है, तो हम व्यर्थ के पाखंडों से बच जायें और चीजें साफ-सुथरी हो जाएं और गणित ठीक से बैठ सके। तब हम इतना कह सकें कि तुम्हारा स्वार्थ निकृष्ट है, यह श्रेष्ठ हो सके तो शुभ है। लेकिन हम उसे क्यों कह रहे हैं, यह भी हमें समझ लेना चाहिए, इसलिए नहीं कि वह परार्थ है। श्रेष्ठ हम उसे इसलिए कह रहे हैं कि वह भी किसी दूसरे की प्रकृति के स्वार्थ को सहयोग दे रहा है। वह बृहत्तर स्वार्थ है, विराट स्वार्थ है। अगर परमात्मा भी इस जगत को चला रहा होगा तो परार्थ के कारण नहीं। उसका कोई निजी स्वार्थ और आनंद है। इसके अतिरिक्त कोई उपाय नहीं है।

यह सारा जीवन भीतर के रस और आनंद से चलता है। और इसलिए मैं कहता हूं कि पूंजीवादी व्यवस्था मनुष्य के स्वभाव के अनुकूल है। मनुष्य के स्वभाव के प्रतिकूल जो भी करने की कोशिश की जाती है वह व्यवस्था ही टूटती है या फिर मनुष्य के स्वभाव को जबरदस्ती तोड़ना पड़ता है। इसलिए जिन पचास साठ देशों में समाजवादी जीवन का प्रयोग हुआ है वहां पता चलना शुरू हो गया है कि आदमी ने श्रम करने की उत्सुकता को खो दिया है। वह उसके स्वार्थ में नहीं मालूम पड़ती। इतना बड़ा स्वार्थ है कि उसकी पकड़ के बाहर हो जाता है।

मैं जानकर ही पूंजीवाद के समर्थन में हूं। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि मैं सोचता हूं पूंजीवाद मनुष्य को अंतिम जीवन-व्यवस्था है। असल में जो लोग भी किसी व्यवस्था को अंतिम कहते है, वे सदा खतरनाक हैं। लेकिन समाजवादी ऐसा मानते हैं कि समाजवाद का जो श्रेष्ठतम रूप होगा साम्यवाद, वह अंतिम व्यवस्था होगी--अल्टीमेट। उसके आगे फिर कोई विकास नहीं है। असल में सभी सिद्धांतवादी इस मानने के भ्रम में पड़ते हैं कि उन्होंने जो सोचा है वह चरम है, उसके आगे कुछ भी नहीं है। जीवन कहीं भी रुकता नहीं। इसलिए सिद्धांतवादी जीवन को रोकने वाले सिद्ध होते हैं। क्यांकि जब उनकी व्यवस्था के आगे जीवन जाने लगे तो वे बाधा खड़ी करते हैं। पूंजीवाद चरम व्यवस्था नहीं है।

पूंजीवाद से बहुत कुछ नया पैदा होगा। पूंजीवाद एक सीमा पर मरेगा और नई व्यवस्था को जन्म दे जाएगा। जैसे पिता मरता है और बेटे को जन्म दे जाता है। लेकिन पिता के खिलाफ बेटे को लड़वाने की और बाप की हत्या करवाने की कोई भी जरूरत नहीं है। बाप, बाप होने की वजह से खुद ही मरता है। असल में जिस दिन बाप, बाप बनता है उसी दिन मरना शुरू हो जाता है। और बेटा जीना शुरू हो जाता है। यह बेटे को भड़का कर बाप की हत्या करवाना फिजूल की मेहनत है। इसमें कोई अर्थ नहीं है। बाप मरने को ही है। और जो बेटा बाप की हत्या करके बाप को मारेगा, ध्यान रखें वह अपने बेटे से सदा सावधान रहेगा। और इसलिए बेटे को पहले ही मार डालेगा। किसी दिन मारने की तैयारी न हो जाए--लेकिन जो बेटा अपने बाप को मारता नहीं, बचाने की आखिरी कोशिश करता है, लेकिन बाप तो फिर भी मर ही जाता है, क्योंकि सभी पुराना मर जाता है और विदा कर आता है रोत हुआ मरघट पर, यह अपने बेटे के प्रति दुश्मनी के भाव से भरा हुआ नहीं होता है।

ध्यान रहे, अगर हमने पूंजीवाद की हत्या करके समाजवाद लाया तो समाजवाद हमारी गर्दन पकड़ लेगा, उसके आगे फिर कोई व्यवस्था नहीं पैदा होने देगा। नहीं, यह जिंदगी बड़ी सीधी और साफ है। यहां जैसे आदमी की जिंदगी में गति है ऐसी गति व्यवस्थाओं में भी है। लेकिन मार्क्स के दिमाग में एक बुनियादी रोग था और वह रोग यह था कि वह चीजों को संघर्ष की भाषा में ही सोच सकता था, सहयोग की भाषा में नहीं सोच सकता था। द्वंद्व, डाइलेक्टिक्स की भाषा में सोच सकता था। वह सारे विकास को कान्फ्लिक्ट की भाषा में सोच सकता था कि सारा विकास द्वंद्व है। यह बात पूरी सच नहीं है। निश्चित ही विकास में द्वंद्वता तत्त्व है। लेकिन द्वंद्व ही विकास का आधार नहीं है, द्वंद्व से भी गहरा "सहयोग"--कोआपरेशन विकास का आधार है। असल में द्वंद्व की वहीं जरूरत पड़ती है, जहां असंभव हो जाता है। द्वंद्व मजबूरी है, सहयोग स्वभाव है। और द्वंद्व भी अगर हमें करना पड़े तो उसके लिए भी हमें सहयोग करना पड़ता है। उसके बिना हम द्वंद्व भी नहीं कर सकते हैं। अगर मुझे आपसे लड़ना हो, और आपको मुझसे भी लड़ना हो तो आपको भी पच्चीस आदमियों का कोआपरेशन करना पड़ेगा। मुझे भी पच्चीस आदमियों का कोआपरेशन करना पड़ेगा। लड़ने के लिए भी सहयोग ही करना पड़ता है। लेकिन सहयोग के लिए लड़ना नही पड़ता है। इसलिए बुनियादी कौन है, हम समझ सकते हैं। लड़ने के लिए सहयोग जरूरी है, लेकिन सहयोग के लिए लड़ना जरूरी नहीं है। इसलिए बुनियादी कौन है?

बुनियादी कोआपरेशन है, कान्फ्लिक्ट नहीं। बुनियादी सहयोग है, द्वंद्व नहीं। क्योंकि बिना सहयोग के द्वंद्व संभव नहीं है। लेकिन बिना द्वंद्व के सहयोग संभव है।

लेकिन मार्क्स के दिमाग में यह खयाल था कि सब चीजें लड़ कर विकसित हो रही हैं। असल में जितने भी लोग मानसिक अशांति से पीड़ित होते हैं, जगत में लड़ाई की भाषा में ही सोच पाते हैं। और मार्क्स कोई शांतचित्त आदमी नहीं था। और दुनिया में बुद्ध जैसा कोई शांत चित्त आदमी कुछ कहता है तो उसकी गहराई और होती है, और मार्क्स जैसा अशांत चित्त आदमी कुछ कहता है तो उसका उथलापन साफ होता है।

मार्क्स की अशांति इतनी भयंकर थी कि अगर एक क्षण भी सिगरेट पीने को नहीं मिलती तो वह बेचैन हो जाता था--चेन स्मोकर। और कहते हैं कैपिटल लिखने में उसने जितनी सिगरेट पी उतनी कैपिटल की बिक्री से उसे दाम नहीं मिले।

मार्क्स की नींद भी बहुत बेचैन थी। वह शांति से सो नहीं सकता था। मार्क्स का विचार भी बहुत धुंधला था। अकसर विचार करते-करते कई बार वह बेहोश भी हो गया था।

मार्क्स के जीवन में कोई ऐसी गहराई नहीं है कि जीवन के किसी गहरे तत्व को देखने की क्षमता उसके पास हो। जब चित्त बहुत अशांत, तनावग्रस्त, एंग्जायटी से भरा हुआ, चिंता से भरा हुआ होता है, टेंशन से भरा हुआ होता है, तो जिंदगी में जो भी हमारे मन में होता है, वही हमें दिखाई पड़ने लगता है।

सिमोन वेल ने एक संस्मरण में लिखा है कि तीस या तीस साल तक की उम्र तक उसके सिर में दर्द बना रहा। और वह दर्द इतना ज्यादा था कि उसे दुनिया में कुछ भी अच्छा नहीं दिखाई पड़ता था। जिसके सिर में दर्द है, उसे दिखाई पड़ भी नहीं सकता। तो जब उसका दर्द ठीक हो गया तो उसने लिखा है कि मैं बहुत हैरान हूं। जब तक मेरे सिर में दर्द था तब तक मैं नास्तिक थी और जब से मेरा सिर दर्द ठीक हुआ तबसे मैं आस्तिक होने लगी।

असल में अगर चित्त पूरा स्वस्थ हो तो आदमी आस्तिक हो ही जाएगा। लेकिन चित्त अगर विकृत हो, रुग्ण हो, नास्तिक होने के सिवाय कोई उपाय नहीं है। क्योंकि जिंदगी में हम वही देखते हैं जो हमारे भीतर है, हम उसी को प्रोजेक्ट करते हैं।

मार्क्स चिंतित, परेशान, द्वंद्वग्रस्त व्यक्तित्व है। असल में मार्क्स को समझने के लिए उसकी साइकोलॉजी में पूरी छान-बीन, पूरी खोज होनी चाहिए। मार्क्स के व्यक्तित्व का हम जितना विश्लेषण करेंगे उतना ही हमें पता चलेगा कि समाजवाद द्वंद्वात्मक क्यों है। यह समाजवाद डाइलेक्टिकल क्यों है? यह समाजवाद इसलिए द्वंद्वात्मक है कि मार्क्स का चित्त द्वंद्वग्रस्त है।

निश्चित ही बुद्ध अगर कोई बात कहेंगे तो द्वंद्वात्मक नहीं होगी। वह समन्वयात्मक होगी, वह सिंथेटिक होगी। उसमें एक संवेदभाव होगा। क्योंकि भीतर जो चित्त है वह समन्वित है, भीतर खंड-खंड में बसा हुआ आदमी नहीं है।

हम दुनिया को वैसा ही देख लेते हैं जैसा देखने वाला चित्त हमारे पास होता है। मार्क्स ने दुनिया को रुग्ण मन से देखा है इसलिए दुनिया हमें द्वंद्व से भरी मालूम पड़ती है। इसलिए हर जगह लड़ाई है, बाप और बेटे में लड़ाई है, गुरु और शिष्य में लड़ाई है, पति और पत्नी में लड़ाई है, गरीब और अमीर में लड़ाई है, सबमें लड़ाई है। नहीं, जिंदगी लड़ाई पर ही नहीं खड़ी है।

असल में जिंदगी में जहां सहयोग चूक जाता है वहां लड़ाई प्रवेश करती है। जिंदगी लड़ाई नहीं है, जिंदगी सहयोग है। और जहां जिंदगी सहयोग में असमर्थ हो जाती है, वहां लड़ाई खड़ी करती है। लड़ाई बीमारी है, स्वास्थ्य नहीं।

द्वंद्व मनुष्य का सहज भाव नहीं है। द्वंद्व मनुष्य की मजबूरी है। कोई भी लड़ने को आतुर नहीं है, लड़ना हर हालत में मजबूरी है। लेकिन इस मजबूरी को मार्क्स नियम, दि लॉ, कानून मान कर चलते हैं तो उन्होंने सारी जिंदगी को द्वंद्व में घेर लिया। इसलिए पिछले पचास वर्षों में जहां-जहां मार्क्स के चिंतन का प्रभाव पड़ा, वहां-वहां जीवन के सब तलों पर द्वंद्व हो गया। चाहे वह गरीब-अमीर का हो, चाहे बाप-बेटे का हो, पति-पत्नि का

हो, जिंदगी को देखने का ढंग द्वंद्व में से हो गया। पति-पत्नि दो मित्र नहीं हैं, दो दुश्मन हैं। बाप-बेटे भी एक जीवनधारा के दो हिस्से नहीं हैं, दुश्मन हैं।

तुर्गनेव ने एक किताब लिखी हैः फादर एण्ड सन्स। पिता और पुत्र। और वहां दिखाई पड़ता है कि पिता और पुत्र भी दो वर्ग हैं दो दुश्मन हैं। सारी जिंदगी दुश्मनी के सूत्र से समाजवाद ने भर दी है जो कि नितांत असत्य है। और न केवल असत्य है, खतरनाक असत्य है। क्योंकि अगर हम एक बार भी उस भाषा में सोचने को तैयार हो जाएं कि सब जगह द्वंद्व है, तो फिर जिंदगी में शांति और जिंदगी में समन्वय और संगीत का कोई उपाय नहीं है। नहीं, मैं नहीं मानता हूं कि पूंजीपति और गरीब में द्वंद्व है। मैं मानता हूं कि पूंजीपति और गरीब के बीच जो सारभूत हिस्सा है वह सहयोग है। और जहां सहयोग असफल होता है वहां द्वंद्व पैदा होता है।

द्वंद्व मूल स्वर नहीं है। द्वंद्व सहयोग की असफलता है। और सहयोग असफल न हो इसकी पूरी कोशिश की जानी चाहिए। लेकिन पूरी कोशिश इसकी की जा रही है कि सहयोग सब जगह खत्म हो जाए और द्वंद्व ही रह जाए। क्योंकि समाजवाद की जीत इसी पर निर्भर है कि सहयोग सभी जगह टूट जाए। कहीं भी अगर सहयोग है तो समाजवाद की संभावना नहीं है। जहां भी सहयोग की थोड़ी संभावना है वहां समाजवाद की संभावना क्षीण हो जाएगी। इसीलिए सब जगह सहयोग टूट जाए तो समाजवाद आ सकता है।

समाजवाद बहुत पैथालाजिकल खयाल है, बहुत रोगग्रस्त खयाल है। अगर हम मनस-विश्लेषण करें समाजवादी चित्त का तो हम पायेंगे कि यह आदमी परेशान है और यह अपनी परेशानी को सारे समाज पर थोप रहा है। और जिंदगी बहुत कुछ देखने पर निर्भर करती है। जो हम देखना शुरू कर देते हैं, मानना शुरू कर देते हैं, उसे हम खोज लेते हैं। वह जगह दिखाई पड़ने लगती है।

अगर एक आदमी गुलाब के फूल के पास जाकर खड़ा हो और कांटों का विश्वासी हो तो फूल उसे शायद ही दिखाई पड़ें। उसे कांटे ही कांटे दिखाई पड़ेंगे। और इतने कांटे दिखाई पड़ेंगे कि उसे स्वभावतः यह खयाल आए कि इतने कांटों के बीच एक फूल नहीं हो सकता, फूल झूठा होगा। स्वभावतः जब इतने कांटे हैं तो फूल कैसे हो सकता है कांटों के बीच में? लेकिन अगर कोई आदमी उसी गुलाब के पौधे के पास फूल को देखने की क्षमता रखता हो और फूल को देखने की क्षमता रखना, मनुष्य के श्रेष्ठतम गुणों में से एक है--फूल को देखने की क्षमता रखना। कांटों को देखने की क्षमता रखना कोई गुण नहीं है।

अगर कोई फूल को देखने की क्षमता रखता हो और एक गुलाब के फूल के चारों तरफ हजार कांटे भी हों और गुलाब के फूल को अगर कोई ठीक से देख पाए तो उसे शक होगा कि जहां ऐसा फूल खिला है वहां इतने कांटे कैसे हो सकते हैं? और जब वह जो फूल को देख कर कांटे देखने जाएगा, वह हैरान हो जाएगा, वह पाएगा कि कांटे फूल की रक्षा के लिए ही हैं, फूल के दुश्मन नहीं हैं। और जो कांटों का प्रेमी है, वह जब कांटों को देखेगा तो वह समझेगा कि फूल जो है वह कांटों को धोखे में छिपाए रखने के लिए इंतजाम है। असली चीज तो कांटा है। यह फूल जो ऊपर से दिखाई पड़ रहा है, यह इसलिए है कि आदमी फूल तोड़ने आ जाए और कांटों में फंस जाए। यह कांटों की तरकीब है, यह फूल जो है, कांटों में फंसाने के लिए है।

हम जिंदगी को जैसा देखते हैं वैसी ही दिखाई पड़नी शुरू हो जाती है। समाजवाद जिंदगी को द्वंद्व से मानकर चलता है। खुद मार्क्स को खयाल न था मौलिक रूप से। मार्क्स बहुत मौलिक चिंतक है, ऐसा मुझे दिखाई भी नहीं पड़ता। लेकिन मार्क्स के पहले हैगल हुआ। हैगल का खयाल था कि दुनिया द्वंद्व से विकसित हो रही है। यह खयाल मार्क्स को भी पकड़ गया।

हैगल तो कहता था कि विचारों के द्वंद्व से विकास हो रहा है, मार्क्स ने उसको और पदार्थवादी बनाकर वर्ग का द्वंद्व और यथार्थ बना दिया। वर्गों के द्वंद्व से विकास हो रहा है। लेकिन कोई पूछे कि कम्युनिज्म के बाद क्या होगा? जब दुनिया में साम्यवाद आ जाएगा तो विकास नहीं हो सकता। कैसे विकास होगा? क्योंकि द्वंद किस-किस में होगा। इसलिए समाजवाद की जो आखिरी सीढ़ी है साम्यवाद, उसके बाद दुनिया में कोई विकास नहीं, वहां सब चीजें ठप्प और मुर्दा हो जायेंगी। क्योंकि उसके बाद दुनिया में कुछ नहीं होगा, न गरीब बचेगा, न अमीर बचेगा। बहुत संभावना तो यह है कि न पत्नी बचेगी, न पति बचेगा। बहुत संभावना तो यह है कि न बाप बचेगा, न बेटा बचेगा। ऐसा नहीं कि बेटे पैदा नहीं होंगे, लेकिन वे सरकारी होंगे--ये निजी नहीं हो सकते।

क्योंकि एक बार संपत्ति सरकारी होनी शुरू हुई तो बेटा भी निजी संपत्ति ज्यादा दिन नहीं हो सकता। उसके होने का कारण किसी निजी व्यक्तिगत संपत्ति की वजह से था।

असल में व्यक्तिगत संपत्ति का अधिकारी कोई और न हो जाए इसलिए बाप और बेटे के संबंध को संगठित होने में सुविधा मिली थी। बाप कहता था, उसका बेटा, उसका खून, उसकी संपत्ति का मालिक हो। जिस दिन संपत्ति सरकारी होगी उस दिन बाप क्यों बेटे के उस झंझट पड़े, इससे मतलब क्या, इससे प्रयोजन क्या? बेटा सरकारी हों जाएगा।

मार्क्स के वक्त में यह खयाल चर्चा का विषय बन गया था कि जब व्यक्तिगत संपत्ति समूह की हो जाएगी तो स्त्रियां कब तक व्यक्तिगत रखने का खयाल है। बहुत ज्यादा देर तक नहीं चल सकता। क्योंकि स्त्रियों को व्यक्तिगत रखने की क्या जरूरत है? सामूहिक होना ज्यादा सुविधापूर्ण होगा। समाजवाद का आखिरी कदम जब मनुष्य की पूरी जिंदगी में घुसेगा तो स्त्री भी व्यक्तिगत नहीं हो सकती। ऐसे भी व्यक्तिगत स्त्री महंगी चीज है।

ऐसे अपने घर में कार रखो तो उपद्रव ही है। बस में बैठने से सुविधापूर्ण है। अगर समाजवाद के विचार को उसके लाजिकल कनक्लूजन (तार्किक निष्पत्ति) तक ले जाया जाए तो इसका मतलब ही यह है कि व्यक्तिगत स्त्री की भी क्या जरूरत है। व्यक्तिगत बेटे की भी क्या जरूरत है। असल में व्यक्तिगत की क्या जरूरत है।

समाजवाद व्यक्तिगत पर चोट है। संपत्ति से शुरू होगी, फिर जिंदगी के भीतर प्रवेश कर जाएगी। जिंदगी के भीतर प्रवेश करना स्वाभाविक है। इसलिए मैं मानता हूं कि समाजवाद बड़ी अस्वाभाविक, अप्राकृतिक, अमानवीय, इनह्यूमन व्यवस्था है। मनुष्य जैसा है--पूंजीवाद आया है--पूंजीवाद लाया नहीं गया है। यह थोड़ा सोचने जैसा है। पूंजीवाद आया है, पूंजीवाद लाया नहीं गया है। यह कोई इम्पोज्ड सिस्टम नहीं है आदमी के ऊपर। इसके लिए किन्हीं लोगों ने प्रचार करके, आंदोलन करके इंतजाम नहीं किया है। कोई क्रांति करके और आदमी को समझा कर और कानून बना कर पूंजीवाद नहीं आया है। पूंजीवाद विकसित हुआ है। समाजवाद को लाने की चेष्टा चल रही है। असल में उसी चीज को लाना पड़ता है जो अप्राकृतिक है--जो प्राकृतिक है, वह अपने से आ जाती है।

आज तक दुनिया की सारी व्यवस्थाएं आई हैं। समाजवाद पहली व्यवस्था है जिसे लाने का इंतजाम करना पड़ रहा है। अब तक जब सब व्यवस्थाएं आ गईं, पूंजीवाद की आगे की व्यवस्था भी पूंजीवाद से आ जाएगी। इसमें इतने अनिश्चित और परेशान होने की क्या जरूरत है? इसे लाने के लिए विशेष आयोजन की क्या जरूरत है? असल में इसे विशेष रूप से तभी लाना पड़ता है।

अगर एक आम वृक्ष पर लगा है और लगा रहे--अपने से पकता है और गिर जाता है। असल में पक जाना और गिर जाना एक ही साथ घटते हैं--युगपत। जिस क्षण पूरा पक जाता है उस क्षण गिरने के सिवाय और कोई मार्ग नहीं रह जाता। राइपननेस इ.ज आल--पक जाना सब कुछ है, फिर गिर जाता है। वृक्ष को पता भी नहीं

चलता कि कब गिर गया पका आम। आम को भी पता नहीं चलता कि कब छोड़ा वृक्ष को। यह जब छूट जाता है तभी पता चलता होगा। लेकिन अगर कच्चे आम को तोड़ ले तो वृक्ष को भी पता चलता है, घाव छूट जाता है। आम को भी पता चलता है, क्योंकि अभी जिससे रस लेना था उससे रस नहीं ले पाया था। और फिर कच्चे आम को कृत्रिम इंतजाम करके पकाना पड़ता है। वह जो काम वृक्ष ही कर देता है वह फिर घर में गेहूं में छिपा कर आम को पकाने का इंतजाम करना पड़ता है।

निश्चित ही, गेहूं में छिपा कर पकाया हुआ आम, वृक्ष पर पके हुए आम से भिन्न होता है। वृक्ष पर पका हुआ आम स्वस्थ होता है। गेहूं में पका हुआ आम सिर्फ बीमार होता है, बुखार से पकाया हुआ होता है।

तो जीवन की व्यवस्था सहजता से आती है--स्पांटेनियस! जो जीवन की व्यवस्था पिछली व्यवस्था से जन्म लेती है, उस व्यवस्था में एक स्वास्थ्य, एक सौंदर्य, एक सरलता, निर्दोषता होती है। जो व्यवस्था जबरदस्ती लाई जाती है, उस व्यवस्था में कुरूपता, एक जबरदस्ती, एक हिंसा और खून के दाग होते हैं।

मेरी दृष्टि में मनुष्य स्वार्थी है। इस सीधे से सत्य को गालियां देने की क्या जरूरत है? लेकिन साधु-संत और महात्मा इसको बहुत गालियां देते रहे। और यह बड़े मजे की बात है कि इनकी गालियां धीरे-धीरे स्वीकृत हो गई हैं। हजारों साल का प्रचार है, हमने स्वीकार कर लिया है कि

आदमी का स्वार्थी होना बुरा है। और है आदमी स्वार्थी, तब आदमी क्या करे? रहेगा आदमी स्वार्थी, परार्थ का चेहरा बनाएगा। अच्छा है, एक आदमी दुकान पर बैठ कर दुकान करे और जाने कि यह दुकान है। नहीं, यह आदमी स्वार्थी मालूम पड़ेगा। यह मंदिर बनाएगा। मंदिर में बैठ कर दुकान चलाएगा, यह परार्थ मालूम पड़ेगा।

लेकिन दुकान एक ईमानदारी है और मंदिर एक बेईमानी हो गई, अगर वहां दुकान चल रही है तो। मैंने सुना है कि हम मनुष्य जाति बहुत सजेस्टीबल हैं। ठीक ही है यह बात। बहुत से सुझाव ग्रहण करनेवाली है। अगर हजारों साल तक कोई बात की जाए तो हम उसे स्वीकार कर लेते हैं, उसे ग्रहण कर लेते हैं। हमने यह बात स्वीकार कर ली है कि स्वार्थ कुछ निंदा योग्य है। तो मैं आपसे कहता हूं कि नहीं, निंदा योग्य नहीं है। स्वार्थ स्वभाव है, और अगर स्वार्थ में कुछ निंदा योग्य तत्त्व भी है तो इसलिए है कि किसी दूसरे के स्वार्थ पर चोट पहुंचती है। यह भी स्वार्थ को चोट पहुंचने के कारण है। फिर मैं एक बात आपसे कहता हूं कि जो आदमी दूसरे को चोट पहुंचा कर अपना स्वार्थ सिद्ध करता है वह बहुत समझदार स्वार्थी नहीं है--एनलाइटंड नहीं है। बहुत समझदार नहीं है। क्योंकि दूसरे के स्वार्थी को चोट पहुंच कर बहुत देर तक अपना स्वार्थ सिद्ध नहीं कर सकता। यह असंभव है।

जो आदमी दूसरों के स्वार्थ को चोट पहुंचा रहा है, दूसरे उसके स्वार्थ को चोट पहुंचाना शुरू कर देंगे।

देर-अबेर वह आदमी दूसरों को पहुंचाई गई चोटों से खुद भी गिर जाएगा, वह चोटें वापस लौट आने लगेंगी। जो आदमी दूसरों के स्वार्थ को भी अपने स्वार्थ से पानी सींच रहा है, जो अपने स्वार्थ को पूरा करते वक्त दूसरे के स्वार्थ को नुकसान नहीं पहुंचा रहा है, लाभ पहुंचा रहा है, वह आदमी बहुत गहरे अर्थों में होशियार-स्वार्थी है, बहुत एनलाइटंड सेलफिशनेस है उसकी। क्योंकि वह आदमी वस्तुतः दूसरों के स्वार्थों को पूरा करके अपने स्वार्थों को पूरा करने के लिए वातावरण और अवसर भी पैदा कर रहा है। यह जगत सामूहिक जीवन है। यह जगत सहजीवन है। यहां हम अकेले-अकेले नहीं हैं। यहां हम सब दूसरे के साथ हैं। और दूसरे के साथ होने का एक ही मतलब है कि यह साथ तभी गहरा हो पाता है जब मेरा जीवन मेरा आनंद ही नहीं, दूसरों का भी आनंद बन जाता है। मैं परार्थ का पक्षपाती नहीं हूं, तो पूर्ण स्वार्थ का पक्षपाती हूं। और मैं कहता हूं कि यदि

आपका स्वार्थ दूसरे को नुकसान पहुंचा रहा है तो आप पूर्ण स्वार्थी नहीं हैं। आप बीज अपनी ही नासमझी से अपने ही अहित में बो रहे हैं। यह हो सकता है कि फल आने में वक्त लग जाए। तो आपको पता न रहे कि अपने ही बोए हुए बीज फल ला रहे हैं। लेकिन जो हम बोते हैं अपने चारों तरफ वह हम तक फिर लौट आता है।

मैं पक्ष में हूं, यह जानते हुए कि पूंजीवादी व्यवस्था स्वार्थी व्यवस्था है। लेकिन स्वार्थ मनुष्य का स्वभाव है। और मैं कहता हूं कि पूंजीवादी व्यवस्था मानवीय है। निश्चित ही पूंजीवाद अंतिम व्यवस्था नहीं है, क्योंकि इस जगत में कोई व्यवस्था अंतिम नहीं हो सकती है।

अंतिम व्यवस्था का मतलब हुआ कि उसके बाद फिर प्रलय के सिवाय और कोई उपाय नहीं रह जाएगा। अंतिम व्यवस्था का मतलब हुआ मौत के सिवाय और कोई गति नहीं रह जाएगी। परफेक्शन और पूर्णता मृत्यु के अतिरिक्त और कहीं नहीं ले जा सकती। कोई भी व्यवस्था परफेक्ट होगी, वह पके आम की तरह गिर जाएगी और क्या करेगी? लेकिन हर गिरती व्यवस्था नई व्यवस्था को जन्म दे जाती है। असल में जब पुराने पत्ते गिरते हैं तो नये पत्ते वृक्ष को भीतर से धक्के देने लगते हैं, आवाज देने लगते हैं, इसीलिए गिरते हैं। पुराना पत्ता गिरता है, नया पैदा हो जाता है।

नई व्यवस्था जब जन्म लेने को तैयार हो जाती है तब पुरानी विदा होने लगती है। इस पुराने का विदा होना, नये का आना शाश्वत है। यह कम्युनिज्म आकर रुक नहीं जाएगा। मार्क्स इस संबंध में नितांत भ्रांत है। और समाजवादी नितांत भ्रांत हैं कि समाजवाद या साम्यवाद की कोई स्थिति चरम और अंतिम हो जाएगी। कोई स्थिति चरम नहीं हो सकती है। न ही कोई स्थिति ऐसी हो सकती है जिसके आगे पाने के लिए कुछ शेष न रहेगा।

हां, इतना ही फर्क पड़ेगा कि रोज-रोज हमारे जीवन के विकास के आयाम बदलते जाते हैं। रोज-रोज हमारा जीवन नये तलों पर प्रकट होने लगता है। आज लड़ाई है कि रोटी नहीं है, कपड़ा नहीं है। जिस दिन रोटी-कपड़ा सारी पृथ्वी पर हो जाएगा, मत सोचना कि उस दिन दुनिया में बड़ा सुख आ जाएगा। उस दिन दुनिया में बड़े किस्म के दुख उभरेंगे। छोटे किस्म के दुख खत्म हो जाएंगे।

इस भ्रांति में कोई मत रहे कि रोटी-कपड़ा-मकान सब मिल जाने से सुख आ जाएगा। नहीं, सिर्फ रोटी-कपड़ा-मकान का दुख मिट जाएगा। जिस दिन रोटी-कपड़ा-मकान का सुख नहीं रह जाता उस दिन और भी अजीब और अनूठे दुख आदमी को घेरने लगते हैं। संगीत घेरने लगता है, काव्य घेरने लगता है, धर्म घेरने लगता है, ध्यान घेरने लगता है, नये दुख पैदा होने शुरू हो जाते हैं। पेट भरा हो आदमी का तो आप यह मत सोचना कि बस वह आराम से घर में बैठ जाता है। वह नये दुखों की तलाश में निकल जाता है।

स्वभावतः नये दुखों की खोज करनी पड़ती है ताकि नये सुख पाए जा सकें। और कोई रास्ता नहीं है। नये दुख की खोज, नये सुख की खोज है। और ऐसा क्षण कभी भी नहीं आएगा जब दुख बिल्कुल नहीं रहेंगे। और अगर किसी दिन आएगा तो उस दिन आदमी मशीन हो चुका होगा, तभी यह हो सकता है।

समाजवाद कहता है कि ऐसा दिन आ सकता है जब दुख नहीं होगा। पूरा भी कर सकता है अपने वायदे को, लेकिन उसके पूरा करने के पहले सचेत हो जाना!

आदमी अगर मशीन हो जाए तो यह हो सकता है कि दुख न आए! क्योंकि सुख भी आने की बात समाप्त हो जाए! मशीनों के लिए कोई दुख-सुख नहीं होता, आदमी के लिए होता है। और यह बड़े मजे की बात है कि हम जरा खयाल करें, अकबर को कौन सी कमी हुई अशोक को कौन सी कमी हुई। शायद समाजवाद बहुत से बहुत सुविधा जुटा देगा आदमी के लिए, सभी आदमियों के लिए तो अशोक जैसी जुटा देगा, अकबर जैसी जुटा

देगा। लेकिन अशोक को क्या तकलीफ है कि मरने के पहले वह पीत वस्त्र पहन कर भिक्षु जैसा रहने लगा। मामला क्या है? इसको खाने की कमी है, इसको कपड़े की कमी है, इसको स्त्रियों की कमी है, इसको धन की कमी है? इसको हो क्या गया? असल में इसके पास सब है। और जब सब होता है तब पहली दफा पता चलता है कि सब बेकार है। जब तक नहीं था तब तक पता नहीं चलता कि बेकार है।

गरीब आदमी आशा में जी सकता है। अमीर आदमी के लिए पुरानी आशा समाप्त हो जाती है। गरीब आदमी इस आशा में दौड़ता रहता है कि एक मकान होगा, एक कार होगी, एक बंगला, एक बगीचा। लेकिन जब सब हो जाता है तब उसे पहली दफा पता चलता है कि यह तो हो गया, लेकिन भीतर तो कुछ भी नहीं हुआ। कुछ अभी खाली का खाली है। वह खाली का खाली नये सवाल उठाना शुरू कर देता है।

जैनियों के चौबीस तीर्थंकर राजाओं के बेटे हैं। सब अवतार राजाओं के बेटे हैं। बुद्ध राजा के बेटे हैं। इस मुल्क में एक अवतार, एक बुद्ध और एक तीर्थंकर भी ऐसा नहीं है जो गरीब घर से आया हो। कुछ कारण हैं। इनके पास सब था। इनके दिमाग खराब थे? इनकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई थी? इनके पास सब था, जो समाजवाद दे सकता है। फिर क्या? लेकिन नहीं, जब इनके पास सब था तो अचानक पता चला कि सब बेकार है। खोज कहीं और करनी पड़ेगी।

मैं नहीं मानता हूं कि समाजवाद कोई अमृत है जिससे सब हल हो जाएगा। कुछ भी हल नहीं होगा, और समाजवाद यह मान कर चलता है कि रोजी-रोटी और कपड़े से सब हल हो जाएगा तो समाजवाद मनुष्य को पशु के तल पर उतार देगा। इसलिए भी मैं उसके पक्ष में नहीं हूं। मैं मानता हूं कि जरूर गरीबी मिटनी चाहिए। लेकिन गरीबी मिटनी चाहिए पूंजीवाद के विस्तार से। गरीबी मिटनी चाहिए व्यक्तिगत संपत्ति के फैलाव से। गरीबी मिटनी चाहिए गरीबी के मिटने से, अमीर के मिटने से नहीं।

गरीबी दो ढंग से मिट सकती है। अमीर को मिटा दो। तब भी मिट सकती है। क्योंकि फिर गरीब को गरीब होने का पता नहीं चल सकेगा। एक और ढंग है मिटाने का कि गरीब को मिटा दो तो भी गरीबी मिट सकती है। अमीर को मिटाना हो तो सीलिंग का रास्ता है कि तय कर दो कि इससे ज्यादा नहीं कमा सकते हो। अगर गरीब को मिटाना है तो फ्लोरिंग का रास्ता है। तय कर दो कि इससे कम नहीं कमा सकते।

मैं मानता हूं, फ्लोरिग की जरूरत है, सीलिंग की कोई जरूरत नहीं है। जमीन नीचे की तय करो कि इससे नीचे किसी को न कमाने देंगे। पूरा मुल्क मेहनत करेगा कि हम हर आदमी को उससे नीचे नहीं कमाने देंगे, इससे ज्यादा तो कमाना ही पड़ेगा। सारा मुल्क ताकत लगाएगा कि इस आदमी को कम न कमाने दें। लेकिन हम अभी ताकत लगा रहे हैं कि सीलिंग कर दें--कि कुछ आदमी अगर ज्यादा कमा रहे हैं तो उनकी सीमा बांध दें कि इससे ज्यादा तुम नहीं कमा सकोगे।

यह अमीर को मिटा कर गरीबी हटाने का खयाल है। फ्लोरिंग नीचे से हम तय करेंगे सौ रुपया, दो सौ रुपया, कुछ भी--इस सीमा के नीचे हम किसी को नहीं कमाने देंगे। और मैं मानता हूं कि अगर हम फ्लोरिंग तय करें तो अमीर का सहयोग मिल सकता है। और अगर हम सीलिंग तय करें तो अमीर से सिर्फ संघर्ष हो सकता है, और कोई उपाय नहीं है।

पूंजीवाद द्वंद्व की भाषा में सोचने से बहुत मुश्किल में पड़ गया है। उसे सहयोग की भाषा में सोचना पड़े! जो जिंदगी का मूल स्वर है, उसमें सोचना पड़े! इस सहयोग के संबंध में एक-दो बात और आपसे कहना चाहूंगा। चूंकि हम सदा से ही लड़ने की भाषा से घिरे हुए होते हैं, इसलिए हमें सहयोग दिखाई नहीं पड़ता जीवन में, अन्यथा सारा सहयोग ही से विकास करता रहा है। अब तक का सारा विकास सहयोग का विकास है। और ऐसा

भी नहीं कि गुलाम और उसके मालिक के बीच सहयोग नहीं था। अगर सहयोग न होता तो गुलामी और इसके बीच की मालकियत टूट गई होती। उसके एक इंच आगे चलने की गुंजाइश नहीं हो सकती थी। नहीं, सहयोग था।

आज हमें लगता है कि गुलाम और मालिक कैसी बुरी बात है। लेकिन आपको पता नहीं कि जिस दिन गुलाम और मालिक दुनिया में पैदा हुए उस दिन बहुत करुणापूर्ण व्यवस्था थी, बहुत कम्पेशनेट व्यवस्था थी। इसको थोड़ा समझना जरूर है। आज हमें लगता है कि गुलामी कितनी बुरी चीज थी कि आदमी बाजार में बिकता था लेकिन जिस दिन आदमी बाजार में बिका था यह बहुत विकसित अवस्था थी उस दिन के लिए। आज पीछे लौट कर देखने पर लगती है, बहुत पिछड़ी हुई व्यवस्था थी।

आदमी किस दिन गुलाम बना? गुलामी के पहले जो भी कबीला किसी दूसरे कबीले पर हमला करता था तो उस हमले में सब पुरुषों को काट डालता था। स्त्रियों को बचा लेता था, क्योंकि स्त्रियां कबीलों को बढ़ाने में सहयोगी होती थीं। अगर दस स्त्रियां हों और एक पुरुष हो तो भी दस बच्चे पैदा हो सकते हैं। और दस पुरुष और एक ही स्त्री हो तो एक ही बच्चा पैदा हो सकता है। तो दूसरे कबीले के पुरुषों को मार डाला जाता था, स्त्रियां बचा ली जाती थीं, वह सहज व्यवस्था थी।

जिन लोगों ने पहली दफा आदमी को गुलामी दी उनमें बड़ी दया थी, उन्होंने कहा कि हम मारेंगे नहीं, हम तुम्हें गुलाम बना देंगे। जिस दिन गुलामी आई, उस दिन बड़ी कम्पेशनेट, बड़ी करुणापूर्ण व्यवस्था थी। और गुलाम खुशी से राजी हुआ करते थे कि विकल्प दो ही थे, या तो वह काट डाला जाए, या तो वह झुक जाए। और दो तरह के आदमी थे, एक वे जो काट डालने की तैयारी दिखला रहे थे और दूसरे जो थोड़े दयावान थे कि हम तुम्हें बचा लेंगे। वह गुलाम और मालिक के बीच सहयोग से शुरू हुई थी।

एक सीमा पर जाकर बेकार हो गई, कोई गुलामों की बगावतें नहीं हुई दुनिया में कि गुलामों की बगावतें हुई हों और गुलामों ने कोई आंदोलन में कोई क्रांतियां की हों और मालिकों ने उन्हें मुक्त किया हो। यह झूठी है बात। गुलामों की कोई बगावत नहीं हुई थी। लेकिन एक व्यक्त आया कि मालिक के लिए गुलाम रखना महंगा पड़ने लगा। चौबीस घंटे उसे खिलाना भी पड़ता, उसको मकान भी देना पड़ता, कपड़ा भी देना पड़ता, बीमार हो तो दवा भी करनी पड़ती, मर जाता तो नुकसान भी उठाना पड़ता। स्वभावतः उसने उसे मुक्त कर दिया। उसने कहा छह घंटे काम दे दो और उसके दाम ले लो।

गुलाम के लिए आजादी मिली और मालिक को सुविधा मिली। वह भी एक सहयोग था। उसमें कोई बगावत और क्रांति नहीं हो गई थी। ठीक ऐसे ही पूंजीवाद जिस दिन पूरी तरह विकसित हो जाएगा, उस दिन मजदूर को नौकरी पर रखना महंगा पड़ने लगेगा। मजदूर को भागीदार बनाना ही सस्ता पड़ेगा। असल में पूंजीवाद अगर ठीक से विकसित हो जाए तो मजदूर को नौकर रखने में बहुत नुकसान है। क्योंकि जब तक मजदूर नौकर है तब तक वह अपने स्वार्थ के लिए काम नहीं कर रहा है फैक्ट्री में। तब तक वह किसी दूसरे के स्वार्थ के लिए काम कर रहा है जो कि मनुष्य के स्वभाव के विपरीत है। उसका स्वार्थ तो पैसा लेने में है। फैक्ट्री से कोई मतलब नहीं है, आग लग जाए तो उससे मतलब नहीं है, फैक्ट्री बंद पड़ जाए तो उसे मतलब नहीं। उसे मतलब है कि उसको कितनी तनख्वाह मिलती है। उसे कितने काम का पैसा मिलता है। फैक्ट्री में कम काम हो कि ज्यादा काम हो, उत्पादन हो कि न हो, हानि हो या लाभ हो, उत्पादन हो या न हो, इससे उसको कोई मतलब नहीं है, क्योंकि फैक्ट्री उसकी नहीं है।

जैसे-जैसे पूंजीवाद विकसित होगा, यह स्वाभाविक परिणाम होगा कि मजदूर को मजदूर रखना महंगा पड़ेगा। उसकी कुशलता बढ़ाने के लिए उसको शेयर बना लेना, उसको भागीदार बनाना ही सरल है। और जिस दिन मजदूर पूंजीपति का भागीदार हो जाएगा उस दिन जिसे मैं समाजवाद कहूं वह फलित होगा। और जिसे अब तक समाजवाद कहा जा रहा है वह समाजवाद नहीं है। मैं जिसे समाजवाद कहता हूं, वह सहयोग से फलित हो। और सहयोग रोज-रोज सुविधापूर्ण होता जा सकता है, अगर हम समझपूर्वक चलें। नहीं तो सहयोग असंभव हो जाएगा। आज असंभव हो गया है। आज हड़ताल है, स्ट्राइक है, घेराव है। और जो मजदूर यह सोच रहा है कि इस भांति हम पूंजीवाद से लड़ रहे हैं, उसे यह पता नहीं कि इस भांति वह अपनी गरीबी को बढ़ा रहा है। क्योंकि मुल्क रोज गरीब होता जा रहा है, मुल्क का रोज उत्पादन गिरता है और उसे जो भड़का रहे हैं वह समझते हैं कि उसके हित में काम कर रहे हैं। वे उसके हित में काम नहीं कर रहे हैं। वे अपने हित में काम कर रहे हैं। जितना मजदूर मुश्किल में पड़े उतना ज्यादा भड़काया जाएगा। जितना ज्यादा भड़काया जाएगा उतनी ज्यादा मुश्किल में पड़ेगा। जितनी ज्यादा मुश्किल में पड़ेगा उतना ज्यादा भड़काया जा सकता है। अंततः बगावत और आग लगवाई है पूरे मुल्क में।

नहीं, मजदूर नहीं पहुंच जाएगा ताकत में। मजदूर पूंजीवादी व्यवस्था को नष्ट करके किन्हीं और लोगों को ताकत में पहुंचा देगा, जो उसके नेता हैं। न तो रूस में मजदूर ताकत में पहुंच गया है, न चीन में ताकत में पहुंच गया है, न दुनिया में कहीं ताकत में पहुंच सकता है। अगर मजदूर ताकत में ही पहुंच सकता होता तो वह पूंजीपति ही हो गया होता!

हां, इतना ही फर्क पड़ सकता है कि वह मालिक बदल ले। गुलामी बदल ले, इतना फर्क पड़ सकता है। और ध्यान रहे, पूंजीपति के तो यह हित में है कि मजदूर उसे सहयोग दें। क्योंकि सहयोग की जबरदस्ती मजदूर पर पूंजीपति थोप नहीं सकता। परसुएड कर सकता है, फुसला सकता है। अगर सारे मजदूर इनकार कर दें कि हम काम नहीं करना चाहते, तो पूंजीपति के पास कोई बंदूक नहीं है कि आपकी छाती पर बंदूक रख दें। पूंजीपति को परसुएड करना पड़ता है कि आप काम करने को राजी हो जायें और मैं इतना पैसा देने को राजी हूं। यह सीधा सौदा है।

लेकिन, एक बार समाजवादी राज्य पैदा हो जाए तो फिर सौदे का कोई सवाल नहीं है। हम सीधे बिके हुए गुलाम हैं, काम करना पड़ेगा अन्यथा मौत। फिर कोई सौदा नहीं है।

कभी आपने सुना कि रूस में कोई स्ट्राइक हुई हो, कोई हड़ताल हुई हो। क्या रूस में किसी को कोई तकलीफ नहीं है? कोई घेराव नहीं होता। नहीं, कोई स्वर्ग नहीं आ गया है। लेकिन घेराव का कोई उपाय नहीं रह गया है, हड़ताल का कोई मामला नहीं रह गया है। हड़ताल किसके खिलाफ करिएगा? जो हड़ताल, जिनके खिलाफ आपको करनी है वही राज्य है, वही मालिक है, दोनों एक हैं।

अगर आज एक पूंजीपति नुकसान पहुंचाता है मजदूरों को तो मजदूर सरकार से अपील कर सकते हैं। क्योंकि एक दूसरी एजेंसी है न्याय की, एक दूसरी व्यवस्था है। वह मालिक और मजदूर से अलग है। और जो यह बात कर सकती है कि मजदूर के साथ अन्याय हुआ, जो नहीं होना चाहिए। लेकिन एक बार राज्य और मालिक एक हो गया फिर अन्याय के प्रतिकार का भी कोई उपाय नहीं है, तो फिर अन्याय ही न्याय है। क्योंकि चुनाव का कोई उपाय नहीं रह जाता।

मुझसे एक मित्र ने पूछा है कि समाजवादी बड़ी न्यायपूर्ण व्यवस्था है, आप उसका विरोध कर रहे हैं?

मैं आपसे कहता हूं कि समाजवाद में न्याय का कोई उपाय नहीं है। न्याय मांगिएगा किससे? वहां चोर और पुलिसवाला एक ही है। और कोई उपाय ही नहीं है। वह जो रात में आप के घर सेंध लगाता है, वही सुबह आपके घर के काम में पहरा देता है। कोई उपाय नहीं है।

समाजवाद सबसे अन्यायपूर्ण व्यवस्था है। जस्टिस की मांग समाजवाद में की ही नहीं जा सकती। किससे मांग करिएगा? कौन मांग करेगा? कोई उपाय नहीं है।

मै नहीं कहता कि समाजवाद न्यायपूर्ण व्यवस्था है। राज्य तभी तक न्याय कर सकता है जब तक राज्य स्वयं के स्वार्थों से बंध न जाए, स्वार्थों के बाहर हो। मजदूर और अमीर के स्वार्थ के बाहर हो। राज्य एक मुक्त व्यवस्था हो, जिसका आर्थिक जगत से अपना कोई सीधा संबंध नहीं है। तब, तब आसान है, नहीं तो बहुत कठिनाई है।

मैं मानता हूं कि पूंजीवाद बहुत न्यायपूर्ण व्यवस्था है, लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि जैसा पूंजीवाद है उसको न्यायपूर्ण सिद्ध कर रहा हूं। इसका यह मतलब नहीं है। अगर वह न्यायपूर्ण नहीं है तो उसका मतलब है वह अभी ठीक से पूंजीवाद ही नहीं है। अभी जो पूंजीवाद हमारे मुल्क में है वह पूंजीवाद भी कहां है? अगर तकलीफें हैं तो पूंजीवाद की तकलीफें नहीं हैं, पूंजीवाद के अविकसित रूप की तकलीफें हैं। जैसे छोटा बच्चा चलता है और गिर-गिर पड़ता है। यह पैरों की गलती नहीं है कि पैर काट दो, क्योंकि पैरों से बच्चा गिरता है। निश्चित ही पैरों से गिरता है बच्चा, जब गिरता है तो। लेकिन जब चलेगा तब भी पैरों से ही चलेगा। पैरों से नहीं गिर रहा है, पैर कमजोर हैं और बच्चे के हैं। अभी चलने योग्य ताकतवर नहीं हो पाए हैं।

इस मुल्क में जो पूंजीवाद की तकलीफ है वह कमजोर पूंजीवाद है, बच्चा है बिल्कुल और उस बच्चे की हत्या की तैयारी चल रही है।

अमरीका में समाजवाद का कोई प्रभाव नहीं पड़ता, क्योंकि पूंजीवाद सबल है। सिर्फ गरीब मुल्कों में समाजवाद का प्रभाव पड़ता है। क्योंकि वहां पूंजीवाद बिल्कुल निर्बल है। उसकी निर्बलता को वे पूंजीवाद का

दोष बतलाते हैं। वह पूंजीवाद का दोष नहीं है। अमरीका में नहीं दिक्कत होती। अमरीका में समाजवाद का कोई प्रमाव नहीं मालूम पड़ता। बढ़ना तो चाहिए अमरीका में प्रभाव बहुत, क्योंकि अमरीका सबसे ज्यादा पूंजीवादी है। लेकिन वहां कोई प्रभाव नहीं मालूम पड़ता।

कारण है इसका--पूंजीवाद सबल है। और उसने धीरे-धीरे अपनी असंगतियां दूर कर दी हैं। और जो असंगतियां रह गई है वह उन्हें दूर कर सकता है। अगर सहयोग की धारणा विकसित हो जाए--"कनसेप्ट ऑफ को-ऑपरेशन" अगर एक बार हमारे खयाल में ठीक से बैठ जाए कि सहयोग के अतिरिक्त देश का कोई भविष्य नहीं है। सहयोग के अतिरिक्त समाज का कोई भविष्य नहीं है। तो पूंजीवाद ठीक से विकसित हो सकता है। और उसमें जो खामियां हैं, उन खामियों को पूंजीवाद को बिना मिटाए खत्म किया जा सकता है। उसकी खामियां क्या हैं?

अब एक मित्र ने पूछा है कि आपके अच्छे-अच्छे विचारों से गरीबों को रोटी तो न मिल जाएगी?

यह मैंने कब कहा कि मेरे अच्छे विचारों से गरीबों को रोटी मिल जाएगी! लेकिन गरीब को रोटी मिले इसके लिए मैं ही जिम्मेवार हूं, गरीब जिम्मेवार नहीं हैं? यह मैंने कोई ठेका लिया है कि मेरे कहने से गरीब को रोटी मिले?

कुछ ऐसा मान लिया गया है कि गरीब को मिलना चाहिए और किसी को देना चाहिए। क्यों किसी को देना चाहिए? यह ठेका है किसी का कि कोई दे! पेट तो गरीब का अपना है, रोटी मेरे विचार से मिले! पेट

किससे लेता है गरीब, किससे मांग कर लाता है पेट को? जब पेट उसके पास है, हाथ उसके पास हैं तो वह कुछ करे। हां, इतना हो सकता है कि हम समाज से मांग करें कि उसे करने की सुविधा हो। वह कुछ करना चाहे तो सुविधाएं जुटाएं। लेकिन हम सुविधाएं तोड़ने में लगे हैं। जो थोड़ी बहुत सुविधाएं हैं उनको भी तोड़ने में लगे हैं।

जब से बंगाल में कम्युनिस्टों का प्रभाव हुआ है तो बंगाल का सारा उत्पादन गिर गया है। बड़े मजे की बात है कि मेरे विचार से रोटी नहीं मिलेगी, तो माओ के पेम्फलेट से रोटी मिल जाएगी? मेरे विचार से रोटी नहीं मिलेगी तो मार्क्स की कैपिटल से रोटी मिल जाएगी?

मेरे विचार से रोटी नहीं मिलेगी तो हड़ताल से, घेराव से और दंगा-फसाद से रोटी मिल जाएगी?

और ट्रामें जलाने से रोटी मिल जाएगी? थोड़ी-बहुत जो रोटी मिलती है, वह भी खो जाएगी।

हां, गरीबी और हो जाए तो समाजवादी नेता के लिए बड़ा फायदा है। असल में गरीबी बढ़े तो समाजवाद के लिए फसल काटने का मौका कम हो जाता है। यह बड़े मजे की बात है--हमारी जिंदगी में बड़े विपरीत काम चलते हैं। अगर अनैतिकता बढ़े तो महात्मा बड़ा प्रसन्न होता है, क्योंकि उसे उपदेश देने का मौका बढ़ता है। अगर सब नैतिक हो जाएं तो महात्मा आउट ऑफ प्रोफेशन, धंधे के बाहर हो जाए। इसका कोई उपाय नहीं है।

इसलिए महात्मा कभी नहीं चाहेगा गहरे में कि सब लोग नैतिक हो जाएं। कहें कितना, समझाएं कितना, लेकिन देखता रहेगा कि कहीं सब तो नहीं हुए जा रहे हैं। अगर सब हो जाएं तो महात्मा बेमानी हैं।

समाजवादी चिल्लाएगा बहुत कि गरीब की गरीबी मिटनी चाहिए। हालांकि उसे यह पक्का पता है कि गरीब है इसलिए वह नेता है। जिस दिन गरीब गरीब नहीं है उसके नेता का कोई आधार नहीं रह जाएगा। इसलिए समाजवादी चिल्लाएगा कि गरीबी मिटाओ और कोशिश करेगा गरीबी बढ़ाने की और गरीबी बढ़ाएगा। जितनी गरीबी बढ़ेगी उतना नेतृत्व मजबूत होगा। जितनी गरीबी

बढ़ेगी उतने नेता के आपकों पैर पकड़ने पडेंगे। और धीरे-धीरे यह सिद्ध कर देगा कि हमारे सिवाय तुम्हारी गरीबी कोई नहीं मिटा सकता।

और मजा यह है कि वह खुद गरीबी बढ़ाने में सहयोगी है। दावा कर रहा है वह कि पूंजीपति गरीबी बढ़ा रहा है, और मैं आपसे कह रहा हूं कि हिंदुस्तान के सब समाजवादी मिल कर हिंदुस्तान की गरीबी बढ़ा रहे हैं।

अगर ये जितने भी समाजवाद की बातें कर रहे हैं इतने समाजवादी पूंजी के उत्पादन की फिकर करें तो यह गरीबी टूट सकती है, लेकिन वह समाजवादी के हित में नहीं है।

और भी एक सोचने जैसी बात है कि समाजवाद की सारी बातचीत गरीबी की तरफ से नहीं आती। यह सारी समाजवाद की बातचीत जो है, फ्रस्ट्रेटेड इनटेलिजेंसिया की तरफ से की जाती है। यह बहुत ज्यादा संत्रस्त जो बुद्धिवादी हैं उनकी तरफ से आती है। गरीब की तरफ से नहीं आती।

एंजिल्स खुद एक पूंजीपति था। और मार्क्स पूरी जिंदगी किसी तरह का कोई श्रम किए हों, या मजदूर रहे हों, या कोई प्रोलिटेरिएट हों, ऐसा कोई भी नहीं कह सकेगा। एंजिल्स पूंजीपति था, उद्योगपति था, उसके ही पैसे से मार्क्स जिंदगी पर पला है। एक पूंजीपति के पैसे से ही पला है। लेकिन मार्क्स एक विचारशील व्यक्ति है। कहना चाहिए मार्क्स एक ब्राह्मण है।

दुनिया में जितने उपद्रव आते हैं वे सब ब्राह्मणों की तरफ से ही आती हैं। उसका कारण है। हिंदुस्तान में नहीं आए, उसका भी कारण है। हिंदुस्तान ने एक बहुत सिक्रेट तरकीब आज से पांज हजार साल पहले खोज निकाली थी और वह यह थी कि ब्राह्मणों को समाज का सिर-मौर बना दिया। कह दिया था कि ब्राह्मण सबके

ऊपर, क्षत्रिय भी उसके पैर छुएगा। और सम्राट भी उसके झोपड़े पर पैर छूने आएगा। तो हिंदुस्तान का ब्राह्मण गरीब रहा, सदा गरीब रहा। ब्राह्मण के पास हिंदुस्तान में कभी संपत्ति नहीं रही। लेकिन उसकी गरीबी में भी उसकी अकड़ का कोई मुकाबला नहीं था। क्योंकि सम्राट भी उसके पैर छू रहे थे।

हिंदुस्तान का ब्राह्मण तृप्त था, फ्रस्ट्रेटेड नहीं था। क्योंकि हिंदुस्तान के ब्राह्मणों को जितना आदर चाहिए उतना आदर उपलब्ध था। गरीबी सही जा सकती है। जो बुद्धिवादी हैं, इनटेलिजेंसिया हैं, वह गरीबी सह सकती है, तकलीफें सह सकती है, बीमारी सह सकती है--अहंकार की तृप्ति होनी चाहिए। यह अहंकार के लिए खिलाफत नहीं सह सकते। हिंदुस्तान बहुत होशियार है इस मामले में। सोशल मैकेनिक्स के मामले में हिंदुस्तान ने बड़ी होशियारी का काम किया जो पृथ्वी पर रूस ने अब किया है, और किसी मुल्क ने कभी नहीं किया।

हिंदुस्तान ने उस आदमी से, जो उपद्रव करवा सकता है, उसको सबसे ज्यादा आदर दे दिया है। जैसे स्कूल में शिक्षक होशियार होता है तो सबसे शैतान लड़के को मानीटर बना देता है।

ब्राह्मण श्रेष्ठतम है। भीख मांगता रहे ब्राह्मण, लेकिन उसके पैर पर सम्राट भी झुकता था ब्राह्मण तृप्त था। उसकी कोई कठिनाई नहीं रही। इसलिए हिंदुस्तान में कोई क्रांति न हो सकी। क्योंकि क्रांति करवाए कौन, शूद्र? शूद्र क्या क्रांति करेगा? शूद्र यानी प्रोलिटेरिएट। शूद्र यानी सर्वहारा, शूद्र यानी मजदूर, शूद्र यानी शोषित, जिसको आज हम ये सब नाम दे रहे हैं।

वह शूद्र कभी क्रांति का एक स्वर नहीं उठा पाया, पांच हजार साल के लंबे इतिहास में। भारत में करोड़ों शूद्रों में से एक ने भी उपद्रव नहीं किया। तो बात सोचने जैसी है कि बात क्या थी? भड़काने वाला ब्राहमण तृप्त था।

अंग्रेजों ने आकर पहली दफा ब्राह्मण को तृप्त नहीं किया, और खतरे शुरू हो गए। अगर अंग्रेज मनु महाराज की तरकीब समझ जाते तो हिंदुस्तान में कोई क्रांति नहीं हो सकती थी, ब्रिटिश साम्राज्य सदा रहता।

हिंदुस्तान के ब्राह्मणों को अंग्रेज तृप्त नहीं कर पाए। और जो नये ब्राह्मण अंग्रेज ने पैदा कर दिए कालेज, स्कूल, इन सबकी शिक्षा से--अंग्रेज ने नया इनटेलिजेंसिया पैदा कया। जो बुद्धिमान है, विचार कर सकता है, लेकिन न श्रम कर सकता है, न उसके पास पूंजी है। न वह मजदूर है, न वह पूंजीपति है। या तो स्कूल का शिक्षक है या दफ्तर का क्लर्क है या कोई कालेज का प्रोफेसर है या किसी अखबार में संपादक है या पत्रकार, वह गरीब नहीं है। मजदूर नहीं है, मजदूर के अर्थ में। और पूंजीपति नहीं है, पूंजी उसके पास नहीं है। महत्वाकांक्षा है उसके पास पूंजीपति से ऊपर होने की, पर हालत है उसकी मजदूर से नीचे होने की।

यह आदमी उपद्रवी है। यह सारे समाजवाद की बातें करेगा, कम्युनिज्म की बातें करेगा, ये सारी दुनिया में। लेकिन रूस ने पचास सालों में उसी ट्रिक का उपयोग किया जो हिंदुस्तान में वर्ण व्यवस्था ने किया था। रूस ने उन्नीस सौ सत्तर के बाद से रूस की इनटेलिजेंसिया को सर्वाधिक आदर का पात्र बना दिया। रूस में एक मिनिस्टर होने से ज्यादा एक एकेडेमीशियन होना महत्वपूर्ण हो गया।

रूस में ब्राह्मण बुद्धिवादी आज सर्वाधिक आदृत व्यक्ति हैं। मजदूर में क्रांति का भाव नहीं रहा। मजदूर जाए भाड़ में, बुद्धिवादी को उससे कोई मतलब नहीं है कभी। लेकिन बुद्धिवादी की अगर महत्वाकांक्षा तृप्त हो जाए तो दुनिया में कोई क्रांति--क्रांति की कोई बात भी नहीं करता।

हिंदुस्तान की तकलीफ असल में गरीब और अमीर के बीच का संघर्ष नहीं है। हिंदुस्तान की तकलीफ हिंदुस्तान की फ्रस्ट्रेटेड इनटेलिजेंसिया का है। हिंदुस्तान का अतृप्त ब्राह्मण है। और हिंदुस्तान का ब्राह्मण है। और

हिंदुस्तान का ब्राह्मण सर्वाधिक अतृप्त है, क्योंकि पांच हजार साल के शानदार जमाने उसने देखे हैं, इसलिए वह सर्वाधिक अतृप्त है। उससे अधिक अतृप्त ब्राह्मण दुनिया में कोई नहीं हो सकता।

स्वभावतः बुद्धिवादी उपद्रव खड़े करेगा। और बुद्धिवादी उपद्रव के अतिरिक्त और कुछ बहुत ज्यादा खड़ा कर भी नहीं सकता। बगावती बातें कर सकता है। ये उसके अपने भीतरी तनाव हैं जो वह प्रकट कर रहा है। यह उसकी भीतरी परेशानियां हैं, जो वह समाज में फैला रहा है। इसलिए मैं आपसे कहना चाहता हूं कि यह समाजवाद की सारी बातजीत दो तलों से पैदा हो रही हैं। एक तो हिंदुस्तान का अतृप्त, परेशान संत्रस्त बुद्धिवादी--और दूसरा हिंदुस्तान का महत्वाकांक्षी राजनैतिक। ये दो आदमी बात कर रहे हैं। इन दोनों के पास हिंदुस्तान के आर्थिक विकास की न कोई कामना है, और न कोई सवाल है। इन दोनों के पास हिंदुस्तान के भविष्य का न कोई नक्शा है, न कोई सपना है। इन दोनों के पास इस स्थिति का, मौजूदा स्थिति का शोषण है।

मैं आपसे कहूंगा कि बुद्धिवादी मुल्क की तनावग्रस्त स्थिति का शोषण करता है। वह लड़ नहीं सकता, क्योंकि खुद ही लड़ सकता तो बात ही और हो जाए, वह भी सर्वहारा हो जाए। लेकिन किसी को लड़ा सकता है। और जिस दिन क्रांति सफल हो जाए, समाजवादी क्रांति, उस दिन मजदूर ताकत में नहीं पहुंचता। उस दिन बुद्धिवादी ताकत में पहुंच जाता है। स्टैलिन से ज्यादा स्कॉलैस्टिक--शास्त्रीय आदमी खोजना मुश्किल है। जितना स्टैलिन स्क्रिप्चर उद्धृत कर सकता है उतना कोई आदमी कम ही कर सकता है। अगर स्टैलिन कि किताब देखें तो वह सिर्फ उद्धरण है। मार्क्स, लेनिन और एंजिल्स इसके उद्धरण हैं।

स्टैलिन पक्का ब्राह्मण है। अगर स्टैलिन से बचता, तो ट्राटस्की के साथ में जाता जो महाब्राह्मण था। जो उससे भी ज्यादा स्कॉलैस्टिक था। कौन मजदूर ताकत में आ गया हैं? दुनिया में कौन मजदूर ताकत में आ गया है? माओ पक्का ब्राह्मण है। शास्त्र की भाषा है सब, पूरी। पेकिंग में और क्रैमलिन में जो झगड़ा है वह मक्का और काशी जैसा झगड़ा है। दो तीर्थस्थान लड़ रहे हैं, शास्त्र की व्याख्या के लिए, कि शास्त्र की व्याख्या क्या है! माओ का दावा है, जो हमारी व्याख्या है, वही शास्त्रीय है। और मास्को का दावा है, तुम्हारी शास्त्रीय कैसे हो सकती है जबकि हमारा क्रैमलिन बहुत अनादि है, बहुत सनातन है, तुम तो पीछे आए! तुम तो अभी बच्चे हो, हम तो बड़े अनुभवी हैं। हम जो कहते हैं, उसको मानो। तो मास्को का रुख पेट्रोनाइजिंग है। उससे माओ को तकलीफ होती है कि आप कुछ पितामह बनने की कोशिश कर रहे हैं। ऊपर हाथ रखना चाहते हैं। वही उपद्रव है।

यह दो शास्त्रों का झगड़ा है, व्याख्या का। दुनिया भर में मजदूर मजदूर ही रहेगा, मैं आपसे कहना चाहता हूं। ज्यादा से ज्यादा इतना हो सकता है कि वह अपना मालिक बदल ले। और मैं आपसे कहूंगा कि पूंजीपति मालिक उतने खतरनाक नहीं हैं जितना बुद्धिवादी मालिक खतरनाक सिद्ध होगा। इसके कारण हैं। अगर ब्राह्मण के चेहरे को देखें तो ब्राह्मण के चेहरे में तलवार होती है, क्षत्रिय के हाथ में होती है। ब्राह्मण के नाक में तलवार होती है ब्राह्मण की आंखमें तलवार होती है। क्षत्रिय के हाथ में तलवार होती है जो कभी-कभी हाथ से रखनी पड़ती है, विश्राम भी करना पड़ता है। जो नाक में तलवार होती है उसे रखने की भी कोई जरूरत नहीं, वह चौबीस घंटे साथ रहती है, सोते में भी।

ब्राह्मण के हाथ में अगर पूरी ताकत चली जाए तो वह जितना क्रूर, जितना हिंसक हो सकता है, उतना दुनिया में कोई सिद्ध नहीं हो सकता है। इसलिए स्टैलिन इतना क्रूर और हिंसक सिद्ध हो सका, क्योंकि वह ब्राह्मण है। माओ इतना क्रूर और हिंसक सिद्ध हो रहा है, क्योंकि वह ब्राह्मण है।

थोड़ा सोच कर बुद्धिवादियों के हाथ में ताकत देना। असल में पूजीपति जो है वह वैश्य है। बनिए से बहुत कठोरता की आशा नहीं की जा सकती। वैश्य के बहुत हिंसक होने की संभावना नहीं है, क्योंकि उसके हिंसक

होने का खयाल ही उसे कठिनाई में डाल देता है। मेरे हिसाब से पूंजीवाद वैश्यों की व्यवस्था है, समाजवाद ब्राह्मणों की व्यवस्था है। सामंतवाद क्षत्रियों की व्यवस्था थी, और शूद्रों की व्यवस्था कभी नहीं हो सकती। बस इन तीन के बीच निरंतर चुनाव चल रहा है। कभी क्षत्रिय हावी हो जाते हैं, वे जो लड़ सकते हैं उनका वक्त गया। कभी व्यवसायी हावी हो जाते हैं, वे जो कमा सकते हैं, धन पैदा कर सकते हैं। और कभी ब्राह्मण हावी हो सकते हैं, जो केवल सोच सकते हैं। न तलवार चला सकते हैं, न धन पैदा कर सकते हैं, सिर्फ सोच सकते हैं। और जो सोचने वाले लोग हैं उनकी कठोरता का कोई हिसाब नहीं। क्योंकि उनके मन में व्यक्ति नहीं होते हैं, तर्क होते हैं। जैसे कि मिलिटरी में होता है, एक आदमी मर जाए तो कहते हैं नंबर नौ गिर गया। वह आंकड़ा है। कोई आदमी नहीं मरता है। अब आदमी मरे तो उसकी पत्नी भी होती है, मां भी होती है, बेटा भी होता है। नंबर नौ की कोई मा नहीं होती है। कोई मां मां नहीं होती, कोई बेटा बेटा नहीं होता है। नंबर नौ!

तो ब्राह्मण के हाथ में अभी तक कहीं ताकत नहीं आई और पहली दफे सोशलिज्म तथा कम्युनिज्म ने ताकतें दी हैं। और ब्राह्मण की ताकत लेने में जो रास्ता बना था वह क्या था--वह तलवार चला नहीं सकता था--धन वह कमा नहीं सकता था, शूद्र को वह भड़का सकता है, दीन को, गरीब को, दरिद्र को भड़का सकता है--यही उसकी तलवार है, यही उसका धन है।

ब्राह्मण सारी दुनिया में हावी होने की कोशिश करते हैं। और मैं मानता हूं, क्षत्रिय उतना खतरनाक नहीं हैं। क्षत्रिय कभी दया भी करता है। असल में यह तलवार चलाता है, तलवार के साथ-साथ उसके चित्त में दया भी पैदा होनी शुरू होती है।

यह बड़े मजे की बात है कि जैनियों के चौबीस तीर्थंकर क्षत्रिय के बेटे हैं। इनमें एक भी ब्राह्मण का बेटा नहीं है। जिन लोगों ने इस मुल्क को अहिंसा का पाठ दिया वे क्षत्रिय के बेटे हैं, ब्राह्मण के बेटे नहीं हैं और जिस आदमी ने इस मुल्क में सबसे ज्यादा हिंसा की वह है, परशुराम। जिसने क्षत्रियों से खाली कर दिया पूरी पृथ्वी को, वह ब्राह्मण है। थोड़ा सेचने जैसा है--यह एकदम प्रासंगिक है, अप्रासंगिक नहीं मालूम होता। यह सांयोगिक, को-इनसीडेंटल नहीं मालूम होता।

जिस आदमी ने इस पृथ्वी को क्षत्रियों से खाली कर दिया, वह ब्राह्मण है! और जिन लोगों ने दुनिया को शांति और अहिंसा की बात कही वे सब क्षत्रिय हैं। बुद्ध भी क्षत्रिय के बेटे हैं और जैनियों के चौबीस तीर्थंकर भी क्षत्रियों के बेटे हैं!

इस सब पच्चीस क्षत्रियों ने दुनिया को अहिंसा का खयाल दिया। एक भी ब्राह्मण ने अहिंसा का खयाल नहीं दिया।

तीसरी व्यवस्था है--व्यवसायी की, धनपति की, पूंजी पैदा करने वाले की। और यह पूंजी पैदा करने वाले की व्यवस्था सर्वाधिक मानवीय है, कई कारणों से।

क्योंकि तलवार सबको सुख नहीं दे सकती है। लेकिन धन अंततः सबके सुख का आधार बन जाता है और पहली दफा वैश्यों ने, कैपिटलिज्म ने दुनिया को सर्वाधिक संपन्नता और सुख दिया है। अब ब्राह्मण पीड़ित है। और वह ब्राह्मण कोशिश कर रहा है शूद्र को भड़काने की। लेकिन समझ लें...

मजदूर समझ ले, सर्वहारा, कि वह कभी पहुंच सकता। उस जगह नहीं पहुंच सकता इसलिए कि वह सर्वहारा इसलिए है कि वह न धन पैदा कर सकता है, न तलवार चला सकता है, न यह विचार कर सकता है।

कभी तलवार के नीचे दबना पड़ता है उसे कभी धन के नीचे दबना पड़ता है उसे, कभी विचार के नीचे दबना पड़ता है।

मेरी अपनी समझ में तीनों दबावों में धन का दबाव सर्वाधिक न्यून है।

और बहुत से प्रश्न हैं। कल संध्या उनकी बात करना चाहूंगा।

मेरी बातों को इतनी शांति और प्रेम से सुना, इससे बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे प्रभु को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

चौथा प्रवचन

लोकशाही समाजवादः एक भ्रांत धारणा

मेरे प्रिय आत्मन्!

बहुत से सवाल बाकी रह गए हैं और अंतिम चर्चा होने के कारण मैं अधिकतम सवालों के संबंध में बात करना पसंद करूंगा, इसलिए सवालों के जवाब संक्षिप्त ही हो सकेंगे।

बहुत से मित्रों ने पूछा है कि आप समाजवाद और साम्यवाद का पर्यायवाची की तरह प्रयोग कर रहे हैं। क्या दोनों में भेद नहीं मानते हैं?

भेद मानता हूं। जैसे टी. बी. के स्टेजेस होते हैं वैसा ही भेद मानता हूं। समाजवाद बीमारी की पहली स्टेज है। साम्यवाद उसकी अंतिम स्टेज है। इधर से मरीज शुरू समाजवाद से करता है, मरता साम्यवाद में है। भेद तो है, लेकिन एक ही बीमारी बढ़ी हुई अवस्था का भेद है। मगर कोई बुनियादी भेद नहीं है। और जो लोग समझाने की कोशिश करते हैं कि समाजवाद साम्यवाद से भिन्न चीज है वे केवल साम्यवाद के नाम पर... ! साम्यवाद के नाम के साथ एक बदनामी जुड़ गई है। उस बदनामी को काटने को नये नाम का प्रयोग कर रहे हैं, अन्यथा कोई फर्क नहीं है।

समाजवादी चेहरे के पीछे साम्यवादी हाथ है।

एक सवाल और बहुत से मित्रों ने पूछा है कि क्या लोकशाही समाजवाद, डेमोक्रेटिक सोशलिज्म की आप बात नहीं करेंगे, क्या वह उचित नहीं हैं?

असल में समाजवाद और लोकशाही में विरोध है--कंट्राडिक्शन इन टर्म्स--लोकशाही और समाजवाद का कोई संबंध नहीं। लोकशाही समाजवाद हो ही नहीं सकता? क्यों नहीं हो सकता! क्योंकि डेमोक्रेसी, लोकशाही का पहला नियम है कि बहुमत अल्पमत पर हावी न हो सके, अल्पमत के हितों को नुकसान न पहुंचे।

एक व्यक्ति के अल्पमत के हित को भी नुकसान नहीं पहुंचना चाहिए। वह लोकतंत्र का आधार है। पूंजीवादी, अल्पमतीय वर्ग है और पूंजीवाद को नुकसान पहुंचाना लोकशाही की हत्या करना है। लोकशाही-समाजवाद का कोई अर्थ नहीं होता। समाजवाद बुनियादी रूप से वर्गीय है, इसलिए वह डेमोक्रेटिक नहीं हो सकता।

समाजवाद की मौलिक दृष्टि पूरे समाज को एक मानने की नहीं है। समाजवाद की मौलिक दृष्टि सबका उदय हो, ऐसी नहीं है। समाजवाद की मौलिक दृष्टि एक वर्ग के पक्ष में दूसरे वर्ग का विनाश करने की है। इसलिए समाजवाद लोकशाही से कैसे संबंधित हो सकता है? लोकशाही मनुष्य के समाज को एक मान कर चलती है। मनुष्य का पूरा समाज एक है। डेमोक्रेसी समाज को वर्गों में विभाजित नहीं करती और जिस दिन आप वर्गों में विभाजित करते हैं--वे वर्ग चाहे कोई भी हों, अगर कोई हमारे मुल्क में लोकशाही-हिंदुवाद का हम प्रचार करना चाहते हैं, तो वह गलत होगा। क्योंकि लोकशाही-हिंदुवाद जैसी कोई चीज नहीं हो सकती, क्योंकि मुसलमान का क्या होगा? अगर पाकिस्तान में कोई कहे कि लोकशाही-इस्लाम का प्रचार कर रहे हैं, तो बात गलत होगी। लोकशाही जब किसी भी वर्ग के साथ जुड़ती है तो गलत हो जाती है। लोकशाही अवर्गीय है। लोकशाही वर्गातीत है।

लोकशाही "बियांड क्लासेस" है। चाहे धर्म का वर्ग हो, चाहे धन का वर्ग हो, चाहे शिक्षा का वर्ग हो, लोकशाही किसी वर्ग को स्वीकार नहीं करती। मनुष्य को वर्ग-मुक्त स्वीकार करती है। इसलिए लोकशाही और समाजवाद का कोई संबंध नहीं हो सकता। डेमोक्रेटिक सोशलिज्म सिर्फ धोखे का शब्द है।

असल में समाजवाद के साथ तानाशाही अनिवार्य रूप से जुड़ी है। अब वह तानाशाही बहुत बदनाम हो गई है। इसलिए लोकशाही शब्द का प्रयोग करना जरूरी हो गया है। लेकिन शब्दों से धोखा देना बहुत मुश्किल है। लेबल बदल देने से आत्माएं नहीं बदल जातीं। जैसे कोई तलवार के ऊपर अहिंसावादी तलवार लिख दे तो इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है।

समाजवाद और लोकतंत्र विरोधी धारणाएं हैं। लोकतंत्र बुनियादी रूप से पूंजीवादी समाज व्यवस्था की आधारशिला है। और अगर समाजवाद को लाना है तो लोकशाही को मिटाना ही पड़ेगा। हां, यह हो सकता है कि कोई एक बार में न मिटाए, कोई धीरे-धीरे मिटाए। जो एक बार में मिटाते हैं उनको लोग कम्युनिस्ट कहते हैं। जो धीरे-धीरे मिटाते हैं, उनको लोग सोशलिस्ट कहते हैं। कुछ लोग होते हैं न! कुछ लोग ऐसे बकरे को मारकर खाने को धार्मिक मानते हैं जो एक ही झटके में मार डाला जाए। और कुछ लोग एक ही झटके में मारे गए बकरे को खाना अधार्मिक मानते हैं। वह धीरे-धीरे घिस-घिस कर मारते हैं।

समाजवाद जो है वह लोकतंत्र को घिस-घिस कर मारना है और साम्यवाद जो है वह झटके से मारना है। पता नहीं परेशानी किस में ज्यादा होगी? बकरे से अब तक पूछा नहीं गया। यह बकरा खानेवालों के निर्णय हैं कि कौन सा ठीक रहेगा। लोकशाही समाज का कोई अर्थ नहीं है। वह शब्द ही अनर्थ है। इसलिए मैंने उसकी बात नहीं की है।

एक दूसरे मित्र ने पूछा है कि समाजवाद का आप विरोध करते हैं तो क्या आप समानता के विरोधी हैं?

मैं समानता का विरोधी नही हूं। लेकिन समानता अमनोवैज्ञानिक तथ्य है। समानता कहीं है नहीं, वह तथ्य नहीं है। और किसी दिन हो सकती है, यह भी संभव नहीं है। मनुष्य अनिवार्यरूपेण असमान है। हम कितनी ही आकांक्षा करें और हम कितनी ही प्रार्थना करें और हम कितना ही उपाय करें, मनुष्य की प्रकृति असमान है। मनुष्य जन्म से असमान है। समानता कल्पना से ज्यादा नहीं है। समान दो व्यक्ति भी नहीं हैं, न हो सकते हैं। अगर हम बुद्धि की माप करें तो... अब तो बुद्धि के मापने के लिए उपाय हैं। तो हम भलीभांति जानते हैं कि ईडियट से लेकर जीनियस तक, जड़ से लेकर मेधावी तक बड़ा अंतर है। और आप अगर बायोलाजिस्ट से, जीवशास्त्री से पूछें तो वह कहेगा कि कोई उपाय अब तक तो नहीं है कि जड़बुद्धि को प्रतिभाशाली कैसे बनाया जाए!

जड़बुद्धि बिल्ट इन प्रोग्रेम लेकर आता है। वह जो मां के पेट में जो अणु हैं उसमें "बिल्ट इन प्रोग्रेम" है कि यह आदमी जड़बुद्धि होगा। जब तक हम मनुष्य के वीर्यकण में रासायनिक परिवर्तन करने में समर्थ नहीं होते तब तक हम मनुष्यता को समान नहीं बना सकते। मनुष्यता असमान रहेगी। और जिस दिन वैज्ञानिक मनुष्य के वीर्यकण में प्रवेश कर जाएगा उस दिन मनुष्यता नहीं रह जाएगी, समानता तो आ जाएगी। उस दिन मशीनें रह जाएंगी। तो दो ही विकल्प हैं--या तो असमान मनुष्य को स्वीकार करो या समान मशीनों का निर्माण करो। इसके अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं है।

जिस दिन वैज्ञानिक बच्चे के अणु में प्रवेश कर जाएगा और रासायनिक फर्क कर सकेगा और यह तय कर सकेगा कि यह गोरा हो कि काला, वह लंबा हो कि ठिगना, इसका बुद्धि-माप, आई. क्यू. कितना हो, जड़बुद्धि हो या प्रतिभाशाली हो, क्रोधी हो कि अक्रोधी हो--जिस दिन रासायनिक प्रकिया से व्यक्ति के अणु बीज में अंतर

किया जा सकेगा उस दिन आदमी को आदमी कहना उचित होगा? नहीं, वह उचित नहीं होगा। वह फैक्ट्री प्रोडक्ट हो जाएगा। कारखाने में बनी चीज हो जाएगा। तब आदमी को हम लिख सकेंगे कि "मेड इन इंग्लैंड" कि "मेड इन जर्मनी" कि "मेड इन इंडिया"। वैसे कई लोग हिंदुस्तान में बनाएंगे लेकिन लिखेंगे, "मेड ए.ज जर्मनी"--"एज" जरा छोटा लिखेंगे।

आदमी असमान है। यह तथ्य चाहे दुखद हो। यह तथ्य है, इस तथ्य को झुठलाया नहीं जा सकता। आदमी की असमानता इतनी गहरी है कि पूरी मनुष्यता समान हो--यह तो दूर, दो आदमी भी समान नहीं खोजे जा सकते। लेकिन इसका क्या मतलब? इसका मतलब यह नहीं है कि मैं यह कह रहा हूं कि प्रत्येक व्यक्ति को समान अवसर न मिले। नहीं, मैं यह नही कह रहा हूं।

असल में समाजवाद में प्रत्येक व्यक्ति को एक समान अवसर नहीं मिल सकेगा, सिर्फ पूंजीवाद में ही मिल सकता है। इसे थोड़ा समझना जरूरी होगा। क्योंकि समाजवाद जिनके दिमाग में भर गया है, वे सोचना ही भूल गए हैं।

फोर्ड या रॉकफेलर या मार्गन या टाटा-बिड़ला समाजवाद में पैदा नहीं हो सकेंगे। इनके लिए कोई अवसर नहीं होगा। लेकिन फोर्ड किसी मार्क्स से कम नहीं है। उसकी अपनी विशिष्टता है। धन पैदा करने की जो लोग क्षमता लेकर पैदा होते हैं, सभी लोग लेकर पैदा नहीं होते। जो लोग धन पैदा करने की क्षमता लेकर पैदा होते हैं उनके लिए समाजवाद में कौन-सा अवसर होगा? इनके लिए कोई अवसर नहीं होगा! समानता के अवसर की बात बड़ी बेमानी मालूम पड़ती है।

समाजवाद में विद्रोही व्यक्तित्त्व के लिए कौन-सा अवसर होगा? अगर मार्क्स सोवियत रूस में पैदा होना चाहे तो नहीं हो सकता। नहीं तो पचास साल में सोवियत रूस ने एकाध तो मार्क्स पैदा किया होता। पूंजीवादी मुल्क ने मार्क्स पैदा किया, पूंजीवादी मुल्क ने लेनिन पैदा किया, पूंजीवादी मुल्क ने स्टैलिन पैदा किया, पूंजीवादी मुल्क ने ट्राटस्की पैदा किया, पूंजीवादी मुल्क ने दुनिया के सब समाजवादी पैदा किए। पचास साल के समाजवादी रूस ने मार्क्स की या लेनिन की या ट्राटस्की की हैसियत का एक आदमी पैदा किया? यह बड़े मजे की बात है। पचास साल में रूस में तो पचासों मार्क्स की हैसियत के आदमी पैदा होने चाहिए। लेकिन मार्क्स भी रूस में पैदा नहीं हो सकता। तो उसका कारण विद्रोह व्यक्तित्त्व के लिए रूस में कोई अवसर नहीं है। यह जो रिबेलियस माइंड है उसके लिए कोई अवसर नहीं है।

रूस में बुद्ध भी पैदा नहीं हो सकते, महावीर भी पैदा नहीं हो सकते, कृष्ण भी पैदा नहीं हो सकते। लेकिन लोग कहते हैं समाज सबको समान अवसर देगा, मुझे नहीं दिखाई पड़ता। यह सोचने जैसी बात है कि उन्नीस सौ सत्रह के पहले के रूस ने बड़े अदभुत लोग पैदा किए, अनेक दिशाओं में। कुछ दिशाओं में रूस हावी हो गया--दोस्तोवस्की या तुर्गनेव या चेखोव या गोर्की या गोगोल--सारे के सारे, टाल्सटाय, ये सारे प्रतिभा के ये धनी लोग उन्नीस सौ सत्रह के पहले पैदा हुए। और ऐसी स्थिती हो गई उन्नीस सौ सत्रह में, अगर दुनिया में लिखी गई दस किताबों का नाम लेना पड़े तो कम से कम पांच रूसी किताबों का नाम लेना पड़े--पांच सारी दुनिया की और पांच रूस की। लेकिन उन्नीस सौ सत्रह के बाद दोतोवस्की, तुर्गनेव, गोर्की, टालस्टाय, गोगोल की हैसियत का एक आदमी भी रूस नहीं पैदा कर सका। उसका कारण है। क्योंकि प्रतिभा सदा ही विद्रोही होती है। सिर्फ जड़बुद्धि विद्रोही नहीं होते। अगर हम इडियट्स का एक समाज बना सकें तो वह कोई विद्रोही नहीं होगा। प्रतिभा सदा विद्रोही होती है। लेकिन विद्रोह का कोई मौका समाजवाद में नहीं है। क्योंकि स्वतंत्र विचार का कोई मौका समाजवाद में नहीं है।

पचास वर्षों में रूस में कोई बड़ी इंटेलेक्चुअल कंट्रोवर्सी नहीं हुई। कोई बड़ा बौद्धिक विवाद नहीं चला। क्योंकि रूस पचास साल से बौद्धिक विवाद का उत्तर तलवार से देता है, बंदूक से देता है। बौद्धिक विवाद कैसे चलता?

मैं नहीं मानता हूं कि समाजवाद सबको समान अवसर देता है। नहीं, समाजवाद सबको अवसर नहीं देता। असल में पूंजीवाद सब तरह के लोगों को--क्योंकि पूंजीवाद के पास कोई जड़-यांत्रिक व्यवस्था नहीं है, पूंजीवाद एक स्वतंत्रता है--सब तरह के व्यक्तियों को पूंजीवाद सुविधा देता है कि वह विकसित हो सके।

जो लोग धन पैदा करना चाहते हैं--उन्हें, जो लोग धर्म का अनुभव करना चाहते हैं--उन्हें, जो लोग काव्य के जगत में प्रवेश करना चाहते हैं--उन्हें, जो चित्र बनाना चाहते हैं--उन्हें... पिकासो की हैसियत का एक चित्रकार भी रूस ने पैदा नहीं किया पचास साल में। उसके कारण है। क्योंकि रूस की सरकार तय करती है कि चित्रकार क्या बनाए, और सरकार प्रोडक्टिव चीजों में भरोसा करती है, अनप्रोडक्टिव चीजों में नहीं।

सरकार कहती है, उत्पादन बढ़ता हो, ऐसा कोई चित्र बनाओ। और उत्पादन बढ़ता हो, ऐसी कोई कविता लिखो। उत्पादन बढ़ता हो, ऐसा कोई उपन्यास रचो। खेत, किसान, ट्रैक्टर यही तुम्हारे सोच-विचार के क्षेत्र हों। कहानी इनके इर्द-गिर्द घूमे। इसलिए रूस ने पचास साल में जितनी किताबें लिखी हैं उतनी बोर्डम से भरी किताबें

दुनिया के इतिहास में कभी नहीं लिखी गई। क्योंकि वही खेत, वही ट्रैक्टर, वही कथा, वही उत्पादन, इसके सिवाय कुछ भी नहीं है। जैसे जिंदगी सिर्फ खेत है, जैंसे जिंदगी ट्रैक्टर है!

पूंजीवाद सभी तरह के विभिन्न व्यक्तियों को विभिन्नता का मौका देता है। और किसी की विभिन्नता पर कोई रोक नहीं लगाता। और प्रत्येक व्यक्ति अपना मार्ग खोजने के लिए मुक्त है। लेकिन आप कहेंगे कि रास्ते में बड़ी बाधाएं पड़ती हैं। हमें कोई बाधा नहीं चाहिए। आप कहेंगे कि गरीब आदमी इसी वक्त करोडपति होना चाहता है। उसके लिए पूंजीवाद में कहां सुविधा है?

कभी पूछा कि समाजवाद में सुविधा है? नहीं, यह खयाल में नहीं आया होगा। एक गरीब आदमी पूंजीपति होना चाहता है इसी वक्त, पूंजीवाद में कहां सुविधा है!

पूंजीवाद में सुविधा है। इसी वक्त होना तो मुश्किल है, लेकिन किसी वक्त हो सकता है। समाजवाद में किसी वक्त भी नहीं हो सकता। इस वक्त तो हो ही नहीं सकता, किसी वक्त भी नहीं हो सकता।

स्वभावतः एक दिन में न पूंजीपति पैदा होते हैं, न एक दिन में चित्रकार पैदा होते हैं, न एक दिन में दार्शनिक पैदा होते हैं। न तो बुद्ध पैदा होते हैं एक दिन में, न फोर्ड पैदा होता है एक दिन में, न आइंस्टीन पैदा होते हैं एक दिन में। जिंदगी भर की लंबी यात्रा है। लंबा श्रम है, लंबी सृजनात्मक चेष्टा है। और उस चेष्टा में निश्चय ही प्रतियोगिता है। क्योंकि आप अकेले ही तो पूंजीपति नहीं होना चाह रहे हैं, पचास करोड़ के मुल्क में पचास करोड़ लोग पूंजीपति होना चाहते हैं।

नहीं, पूंजीवाद आपको नहीं रोक रहा है पूंजीपति होने से। जितनी पूंजी है वह कम है और जितने लोग पूंजीपति होना चाह रहे हैं वे बहुत हैं। इसलिए स्वभावतः सभी लोग पूंजीपति नहीं हो सकते हैं।

इस मुल्क में एक आदमी राष्ट्रपति हो सकता है, हालांकि पचास करोड़ आदमी राष्ट्रपति होना चाहते हैं। पचास करोड़ आदमी राष्ट्रपति नहीं हो सकते। और अगर पचास करोड़ को राष्ट्रपति बनाना हो तो फिर राष्ट्रपति ही नहीं होगा। जीवन एक प्रतियोगिता है। अब सवाल यह है कि प्रतियोगिता स्वतंत्र होनी चाहिए। पूंजीवाद में स्वतंत्र है, समाजवाद में स्वतंत्र नहीं है।

असल में समाजवादी व्यवस्था तय करेगी कि आप क्या पढ़े, क्या सोचें, क्या करें। निर्णायक आप नहीं होंगे।

पूंजीवाद आपको पूरा मौका देता है कि आप जो होना चाहें--हां, लेकिन बहुत लोग असफल हो जाते हैं,--होंगे ही। सभी लोग सफल नहीं हो सकते। जो असफल हो जाते हैं, वे सोचते हैं कि हम पर बड़ी ज्यादती हो रही है। जो असफल हो जाते हैं, वे सोचते हैं, जो लोग सफल हो गए; चालाक, बेईमान, धोखेबाज, शोषक हैं।

बड़े मजे की बात है--अगर वे भी सफल हो गए होते तब? तो दूसरे उनके संबंध में सोचते कि चालाक, बेईमान, चोर हैं।

असल में असफल हमेशा सफल हो गए आदमी को गालियां देना पसंद करता है। इससे उसके मन को बड़ी राहत और कंसोलेशन मिलता है, हर्जा भी नहीं है। गाली दें तो कोई हर्जा नहीं है। लेकिन उसका वाद बनायें, तब खतरे शुरू हो जाते हैं।

अब एक मित्र ने पूछा कि एक करोड़पति अपनी मेहनत से धन कमा लेता है। वह तो ठीक है, लेकिन उसका बेटा भी तो मालिक हो जाता है?

उसका बेटा उसने पैदा किया है वह बेटा। उसने धन भी पैदा किया--किया! उसने बेटा भी पैदा किया है।

दोनों के बीच कुछ संबंध होना चाहिए कि नहीं होना चाहिए। शायद हमारा खयाल यह हो कि धन पैदा करे और बेटा हम पैदा करें, दोनों के बीच कोई संबंध हो। यह अन्यायपूर्ण दिखाई पड़ता है। पूछा इसी ढंग से गया है कि कितना बड़ा अन्याय हो रहा है। उसने कमाया था, मान लिया, लेकिन उसके बेटे ने तो नहीं कमाया था। लेकिन बेटा उसका है। यह बेटा तो उसी ने कमाया है। शायद आप सोचते हों, यह ज्यादा न्यायपूर्ण होगा कि धन किसी का हो और बेटा किसी का हो। नहीं, वह कैसे न्यायपूर्ण हो जाएगा? अगर यह अन्यायपूर्ण है तो दूसरी बात तो बिल्कुल अन्यायपूर्ण हो जाएगी।

गरीब एक बेटे को पैदा कर रहा है। उसे दस दफे सोचना चाहिए बेटा पैदा करते वक्त क्योंकि वह बेटे को सिवाय गरीबी के और क्या दे जाएगा? नहीं, लेकिन वह बेटा खड़ा होकर अपने बाप से शिकायत न करेगा कि तुमने मुझे क्यों पैदा किया, वह शिकायत करेगा कि वह बड़े आदमी का बेटा क्यों धन लूट रहा है। शिकायत अपने बाप से करनी चाहिए, और तो किसी से करने का कोई उपाय नहीं है। वैसे बाप से करना बेमानी है, क्योंकि बात हो ही गई है और शिकायत का कोई उत्तर नहीं है।

अगर बाप से शिकायत हो तो बेटे को पैदा करते वक्त खयाल करना, इसके सिवाय और कोई उपाय नहीं है। जब अपना बेटा पैदा करने लगो तब सोचना कि बेटे को क्या दे जाऊंगा। अगर दुनिया के गरीब बेटे को पैदा करते वक्त एक दफा सोच लें कि बेटे को क्या दे जायेंगे, तो दुनिया में इतनी गरीबी न हो। लेकिन गरीब बिल्कुल बेफिकर है। उसे बेटा पैदा करते वक्त बिल्कुल फिक्र नहीं होती।

एक सज्जन अभी कोई दो-तीन महीने हुए, मेरे पास आए। अब हम कैसी मुश्किल में पड़ते हैं। कभी-कभी मेरी बातें बिल्कुल कठोर मालूम पड़ती हैं, लेकिन मजबूरी है। क्योंकि सत्य जैसा है, वैसा है, वह कठोर भी हो सकता है। वे सज्जन आए और मुझसे कहने लगे कि मेरी कुछ सहायता कीजिए। मुझे अपनी बेटी का विवाह करना है। मैंने कहा, तुम बेटी को पैदा करते वक्त मेरे पास सहायता के लिए बिल्कुल नहीं आए। तुम बेटी पैदा करो, मेरी कोई गलती है इसमें। कितनी बेटियां हैं तुम्हारी? सात बेटियां हैं, उन्होंने कहा। सब अच्छे आदमी

सहायता कर रहे हैं। मैंने कहा, जो अब सहायता नहीं करेगा वह बुरा आदमी हो जाएगा, स्वभावतः। जब अच्छे आदमी सहायता कर रहे हैं तो मैं बुरा आदमी हो जाऊंगा, क्योंकि मैं सहायता नहीं कर रहा हूं। मेरी बात तुम्हें कठोर मालूम पड़ेगी। मैंने उन्हें कहा कि सात लड़कियां पैदा करने को तुमसे कहा किसने? इसका समाज का कोई जिम्मा है?

तुम बच्चियां पैदा करोगे और समाज दोषी ठहर जाएगा। और जो सहायता नहीं करेंगे तुम्हारी वे पापी मालूम पड़ेंगे, अपराधी मालूम पड़ेंगे। बेहुदी है बात। नहीं, हमें गरीब आदमी को साफ-साफ समझाना पड़ेगा कि तुम्हारी गरीबी के लिए तुम्हारे पिता जिम्मेवार होंगे, उनके पिता जिम्मेवार होंगे। पीढ़ियां जिम्मेवार होंगी, तुम पीढ़ियों से गरीब हो और बच्चे पैदा किए जा रहे हो। किसी ने तुमसे नहीं कहा कि तुम बच्चे पैदा करो।

असल में बच्चा पैदा करने का अधिकार भी कमाना चाहिए। लेकिन बच्चा पैदा करने का अधिकार कोई नहीं कमाता। अपने बेटे को क्या दे जाओगे, इसे जाने बिना बेटा पैदा करना अन्याय है। यह बाप का अन्याय है बेटे के ऊपर। यह मां का अन्याय है बेटे के ऊपर। लेकिन यह बड़े मजे की बात है कि यह अन्याय थोपा जाएगा किसी और पर। कौन जिम्मेवार है उसका?

हमारे मन में कुछ खयाल ऐसा बैठ गया है कि अगर कोई दुखी है तो उसे दुख पहुंचाने के लिए कोई और जिम्मेवार होना चाहिए। वह खुद भी जिम्मेवार हो सकता है, यह हमारे खयाल में नहीं आता। यों हम बड़े भ्रांत तर्कों में भटकते रहते हैं। अगर मैं बीमार हूं तो किसी स्वस्थ आदमी को पकड़ लूं और कहूं कि तुम जिम्मेवार हो, क्योंकि तुम स्वस्थ क्यों हो? मैं बीमार हूं। कल मैं यह कह सकता हूं कि तुम स्वस्थ थे, यह तो ठीक है, लेकिन तुम्हारा बेटा भी स्वस्थ पैदा हुआ।

तुमने व्यायाम किया था, वह तो ठीक है, तुम स्वस्थ थे, लेकिन तुम्हारा बेटा क्यों स्वस्थ पैदा हो गया? तो व्यायाम करने वाले बाप का बेटा स्वस्थ पैदा होगा, इसमें कौन सी तकलीफ है? इसमें कौन सी तर्क की भूल है? नहीं, लेकिन हम पूछते हैं और इस पूछने में बुनियादी भूल हो जाती है और इस भूल के व्यापार परिणाम होते हैं।

एक मित्र ने कहा है कि कुछ लोगों को क्या अधिकार है कि सब लोग गरीब हैं तो वे अमीर हो जाएं?

बड़े मजे की बात है। इसमें उलटा पूछा जाना चाहिए जब कुछ लोग अमीर हैं तो इतने लोगों को क्या अधिकार है कि वे गरीब रह जाएं! क्योंकि वह पूछना अर्थपूर्ण है। क्योंकि जो हम पूछेंगे उससे दिशा निकलेगी।

हम पूछते हैं, इतने लोगों को क्या अधिकार है कि वे धनी हो जाएं जब कि इतने लोग गरीब हैं। तो क्या मतलब है? थोड़े गरीब ज्यादा हो जाएंगे तो आनंद आएगा आपको। दस-पच्चीस और आदमी गरीब हो जाएं तो तृप्ति मिलेगी आपको।

जो इस तरह का सवाल है, वह सवाल यह मान कर चलता है कि सभी अगर गरीब हों तो बहुत अच्छा है। नहीं, मैं ऐसा मान कर नहीं चलता। मैं मान कर चलता हूं कि सभी अमीर हों तो बहुत अच्छा है। इसलिए सवाल को मैं दूसरी तरफ से पूछता हूं।

मैं पूछता हूं, जब इतने लोग अमीर हैं तो बाकी इतने अधिक लोग गरीब रहने का क्या अधिकार रखते हैं? कोई अधिकार नहीं है गरीब होने का। असले में गरीबी अयोग्यता है। अधिकार नहीं है। सब तरह की अयोग्यता है। लेकिन उस अयोग्यता को स्वीकार करने में पीड़ा होती है। हम सभी मानते हैं कि हम सभी पात्र हैं भोगने के। लेकिन पैदा करने के लिए भी पात्रता चाहिए, उसकी हमें कोई चिंता नहीं है।

इस पृथ्वी पर प्रतियोगिता है, यह सत्य है--होगी ही। सारा जीवन प्रतियोगिता है। लेकिन प्रतियोगिता दुखद हो जाती है, कड़वी हो जाती है जब हम दोषारोपण करना शुरू कर देते हैं दूसरों पर। यह प्रतियोगिता सहज हो जाती है, सरल हो जाती है, सुखद हो जाती है, खेल बन जाती है, स्पोर्टसमेनशिप हो जाती है, जब हम अपनी पात्रता को बढ़ाना और अपनी क्षमता को बढ़ाना शुरू कर देते हैं। मैं आपसे कहना चाहता हूं गरीब गरीब है क्योंकि उसके जीने का ढंग, उसके सोचने का ढ़ंग, उसका दर्शन, उसका धर्म, उसके विचार, उसकी परंपरा, उसका परिवार, उसके पिता और उसकी पूरीशृंखला गरीबी का निर्माण कर रही है।

इसे थोड़ा सोचना जरूरी है कि हम गरीबी किस तरह निर्माण करते हैं। हमारा देश है, अगर हम इसकी गरीबी की तरफ देखेंगे तो हमें पता चलेगा कि यह गरीबी बिल्कुल निर्मित गरीबी है। पहली बात तो यह है कि अमीर होने का सूत्र है, आवश्यकताओं को बढ़ाओ। और गरीब होने का सूत्र है कि आवश्यकताएं कम रखना, सादे जीना। तो रहोगे गरीब ही! जो कौम यह सोचती है कि आवश्यकताएं कम होना अच्छी बात है, वह कौम कभी भी समृद्ध नहीं हो सकती है।

जो आदमी सोचता है कि आवश्यकताएं सदा कम रखी चाहिए और पैर उतने ही फैलने चाहिए जितनी चादर है, तो ध्यान रखें पैर तो रोज-रोज बढ़ते जाते हैं, चादर को बढ़ते कभी नहीं सुना है। अपने आप चादर नहीं बढ़ती है, पैर अपने आप बढ़ते हैं। तो फिर सिकोड़ते जाना पैरों को, क्योंकि चादर जितनी है उतने ही पैर फैलाना। फिर मरेंगे भीतर, क्योंकि चादर बहुत छोटी रह जाएगी और हम बहुत बढ़ जाएंगे। पूरे भारत के ऊपर चादर बहुत छोटी है और आदमी बहुत ज्यादा हैं। सब सदगुरु समझा गए हैं कि आवश्यकताएं बढ़ाना मत। अब यह सब सदगुरु मिल कर हम सबको गरीब कर रहे हैं। क्योंकि जो आवश्यकताएं बढ़ाएगा वह उत्पादन बढ़ाएगा। जो आवश्यकता बढ़ाएगा वह श्रम करेगा, जो आवश्यकता बढ़ाएगा वह सृजन करेगा। अगर मैं चादर के बाहर पैर निकालूंगा तो ही चादर को बड़ा करने का खयाल उठेगा। इसलिए जितनी चादर हो सदा उससे ज्यादा पैर पसारना, क्योंकि पैर बाहर जाएगा, ठंड लगेगी तो चादर बड़ी करनी पड़ेगी। गर्मी लगेगी तो चादर बड़ी करनी पड़ेगी। तकलीफ होगी तो चादर बड़ी करनी पड़ेगी।

गरीब आदमी का पूरा जीवन-दर्शन उसे गरीब बनाता है। और वह उसमें बड़ी खुशी अनुभव करता है, बड़ा आनंद अनुभव करता है। हम गरीबी को पूजा दे रहे हैं। अगर कोई आदमी स्वेच्छा से गरीब हो जाए तो सारा गांव उसके चरणों में सर रखने को राजी है। कभी कोई आदमी स्वेच्छा से अमीर हो गया तो क्या गांव भर ने उसके चरणों में सर रखा है?

नहीं, कोई आदमी जब अमीर हो जाता है तो गांवभर ईर्ष्या से जल जाता है। और जब कोई आदमी स्वेच्छा से गरीब हो जाता है तो गांव भर में आनंद छा जाता है जैसे कोई घटना घट गई। अगर महावीर--राजा का बेटा सड़क पर भीख मांगने लगता है तो सारा गांव उसके पैर छूने लग जाता है। जरा सोचने जैसा मामला है। और अगर भिखारी का बेटा राजा हो जाए तो पूरा गांव आग से जलता है, नींद हराम हो जाती है पूरे गांव की।

इसमें थोड़ा विचार करने जैसा है। गरीब को देख कर हम इतने प्रसन्न क्यों होते हैं? गरीबों को हम इतना सम्मान क्यों देते हैं? असल में गरीबी को सम्मान देने के दो कारण हैं।

एक तो जब भी कोई अमीर गरीब हो जाता है, स्वेच्छा से, तो हमारे गरीब को बहुत अहंकार की तृप्ति मिलती है कि गरीबी बड़ी ऊंची चीज है, देखो अमीर भी गरीब हो रहे हैं। यानी हम पहले से ही उस स्थिति को उपलब्ध हैं जो उन बेचारों को करनी पड़ रही है। हम बड़े गौरवांवित होते हैं। हम बड़े प्रसन्न होते हैं। हमारे

चित्त के आह्लाद की कोई सीमा नहीं रहती। धन्यभाग हैं हम, भगवान की अपरिसीम कृपा हम पर है कि हमें उसने वही बनाया जो बेचारे महावीर, बुद्ध को बनना पड़ रहा है। उनको चेष्टा करनी पड़ रही है। हम पहले से ही हैं।

लेकिन ध्यान रहे, महावीर की गरीबी, गरीबी नहीं है। महावीर की गरीबी अमीर का आखिरी कृत्य है। महावीर की गरीबी "लास्ट लक्.जरी" है, जो अमीर आदमी कर सकता है। आपका सड़क पर पैदल चलना एक बात है और जब रॉकफेलर का बेटा सड़क पर पैदल चलता है तो दूसरी बात है। आप फैक्ट्री में काम करने जा रहे हैं, और वह टहलने जा रहा है। और आप के लिए कार में बैठना संभव नहीं है, और वह कार में बैठ-बैठ कर ऊब गया है और स्वाद बदल रहा है।

अमीर का बेटा जब गरीबी को वरण करता है तो वह अमीरी के स्वाद से ऊब गया और अब वह गरीबी का रस लेना चाहता है। उसकी गरीबी स्वेच्छा से वरण की गई गरीबी, अमीर का आखिरी विलास है--अंतिम विलास, जो अमीर कर सकता है। और मैं मानता हूं, अमीरही कर सकता है। गरीब तो कर ही नहीं सकता। स्वेच्छा से गरीब हो जाना आखिरी मजा है।

इसलिए आज जब अमरीका के करोड़पति का बेटा, काशी में आकर भीख मांग लेता है, तो उसके मजे का आपको पता नहीं है। जब आपका बेटा भीख मांगता है तो आपको पता नहीं कि इन दोनों में क्या बुनियादी फर्क है।

मैं काशी में था तो मुझसे एक हिप्पी मिलने आए। मैंने उनसे कहा कि तुम यह क्या पागलपन कर रहे हो? मुझे परिचय में बताया कि वे जो लड़के और लड़कियां मुझसे मिलने आए हैं वह अरबपतियों के लड़के हैं। मैंने उनसे पूछा कि यह तुम क्या कर रहे हो? काशी की सड़क पर दस-दस पैसे की भीख मांगते हैं। वह कहने लगे कि हमें बड़ा आनंद आता है। डेंजर में भी जी रहे हैं, खतरे में जी रहे हैं। बड़ा मजा आता है कि पता नहीं, आज कुछ मिलेगा कि नहीं मिलेगा। ये ओवरफेड बच्चे हैं। जिनको इतना मिला है कि अब इनको न मिलने में भी मजा आ रहा है। इनके पास सब था। यह ऊब गए हैं। और ये जब सड़क पर हाथ फैला कर खड़े हैं तो इनकी जिंदगी में एक पुलक, एक एडवेंचर, कि यह आदमी दस पैसे देगा कि नहीं देगा--और यह दस पैसे नहीं देगा तो चाय नहीं मिलने वाली है।

अब इनका जो यह फैला हुआ हाथ है, उसका मजा बहुत दूसरा है। यह अमीर का फैला हाथ है, जो खेल में वह फैला रहा है। इस हाथ को देख कर गरीब बड़े प्रसन्न होते हैं।

इस मुल्क का गरीब आदमी, गरीबी को गौरवांवित समझने लगा है। वह कभी विकसित नहीं हो सकता। और गरीबी को उसने स्वीकार कर लिया है जैसे कोई बहुत पुण्य का काम कर रहा है। अमीर तो अपराधी मालूम पड़ता है, पापी मालूम पड़ता है और गरीब? गरीब संत और साधु मालूम पड़ता है। ग्रामीण आदमी को देख कर हम ऐसे होते हैं जैसे कोई संत-साधु हो। बड़ा भोला है, बड़ा सीधा-सादा है। प्रशंसा हमारे मन में है। वह प्रशंसा गलत है, झूठी है। वह प्रशंसा खतरनाक है, आत्मघाती है, सुसाइडल है। और दूसरी बातः गरीब को सुख मिलता है जब कोई अमीर गरीब होकर खड़ा हो जाता है सड़क पर, तो उसकी सेडिस्ट, उसकी दूसरे को दुख देने की वृत्ति को रस आता है।

जिन मुल्कों में त्याग की प्रशंसा है वह मुल्क बुनियादी रूप से सैडिस्ट हैं। वे मुल्क दूसरे को दुख देने में मजा ले रहे हैं। और जब कोई आदमी खुद अपने को दुख देने लगता है तब तो मजा और भी ज्यादा आता है। हमको दुख देने का कष्ट भी नहीं उठाना पड़ रहा है, वह दुख ही दुख दे ले रहा है।

एक आदमी लेट जाए कांटों पर तो बस हम पहुंच जाते हैं हाथ जोड़ने। अब इसको अस्पताल भेजना चाहिए, इसकी चिकित्सा होनी चाहिए। कांटों पर लेटना--यह आदमी बीमार है, पैथालॉजिकल है, रुग्ण है। लेकिन हम नमस्कार करते हैं कि परमहंस हो गया वह आदमी।

असल में हम किसी को कांटे पर लिटाते तो जितना मजा आता उससे भी ज्यादा मजा इसमें आ रहा है कि यह अपने आप लेट गए हैं। हमको लिटाने की तकलीफ से भी बचा दिया। तो गरीब को सुख मिलता है देख कर कि अच्छा ठीक है। कभी आपने खयाल नहीं किया होगा। अगर कोई आदमी आपके पड़ोस में एक बड़ा मकान बना ले तो खुशी नहीं होती, कोई खुशी नहीं होती, पीड़ा होती है। लेकिन उसके मकान में आग लग जाए, तो आप सब दुख, संवेदना प्रकट करने उसके घर जाते हैं। आप कहते हैं, बहुत बुरा हो गया। अब यह मैं मान नहीं सकता, क्योंकि जब यह मकान बना था तब आपके मन में ऐसा नहीं लगा था कि बहुत अच्छा हो गया। इस मकान के जलने से आपके मन में लग नहीं सकता कि बहुत बुरा हो गया। जब यह मकान बना था तब आपके मन में ईर्ष्या जगी थी। और अब आप जाकर कह रहे हैं कि बहुत बुरा हो गया तो आपकी आंख और आपके हृदय की अगर जांच-पड़ताल की जाए तो ज्ञात होगा कि भीतर से आप बड़ा रस और आनंद ले रहे हैं। यह सहानुभूति रुग्ण है और झूठी है। लेकिन हम उस चित्त को पहचान नहीं पाते। और इस चित्त को जो सहारा मिल जाता है, उसको हम इकट्ठा करके जीए चले जाते हैं।

गरीब आदमी का जीवन-दर्शन उसे गरीब बनाता है। अगर आज अमरीका अमीर है तो अमरीका के जीवन-दर्शन की बुनियाद है। अगर हिंदुस्तान गरीब है तो हिंदुस्तान के जीवन-दर्शन की बुनियाद है।

आवश्यकताएं कम करने का सिद्धांत, सिकोड़ने का सिद्धांत समृद्धि नहीं ला सकता। इसके लिए कोई अमीर जिम्मेवार नहीं है कि मेरा मुल्क गरीब है। इसके लिए पूरा मुल्क जिम्मेवार है कि वह गरीब है। यह कुछ लोग जो कि इस बातचीत के बाहर निकल गए हैं वे अपवाद हैं। मगर यह भी गिल्टी अनुभव करते हैं। हिंदुस्तान में मैंने अमीर आदमी नहीं देखा अभी तक जो गिल्टी अनुभव न करता हो, जो अपने को अपराधी न मानता हो। बड़े से बड़ा अमीर, फिर वह अपने अपराध का प्रायश्चित करता रहता है। कोई मंदिर बनवा कर करता है कोई धर्मशाला बनवा कर करता है, कोई तीर्थ पर घाट बनवाता है, कोई अस्पताल खोलता है, कोई स्कूल खोलता है। वह जो अमीर होने की गलती उसने की है, वह जो धन कमानें की भूल उसने की है उसका वह प्रायश्चित करता है। उसका वह पश्चात्ताप करता है। हिंदुस्तान का कोई अमीर मुझे नहीं मिला जो कि प्रसन्न हो इस बात से कि उसने कुछ काम किया है। और हिंदुस्तान के गरीब की तो बात ही अलग है।

नहीं, यह दृष्टि भ्रांत है। यह दृष्टि जिम्मेवार है। समाजवाद आ जाने से कुछ नहीं हो जाएगा, यह जीवन-दृष्टि बदलनी चाहिए। यह जीवन-दृष्टि हटनी चाहिए, जीवन विस्तार है। जीवन जितना विस्तृत होता है, उतना प्रफुल्लित होता है। सारा जीवन विस्तार है। संकोच मृत्यु है। जीवन विस्तार है। जितना हम फैलते हैं उतना ही जीवन भीतर से खिलता और प्रफुल्लित होता है। एक छोटे से बीज को बों दें, तो फैल कर वृक्ष बन जाता है। और एक बीज में करोड़ों अरबों बीज लग जाते हैं।

परमात्मा का सारा का सारा आयोजन विस्तार का है। और हिंदुस्तान लोग गरीब आदमी, और गरीब आदमी के दर्शन के संकोच की भाषा में सोचते हैं। वे कहते हैं, और कम कर लो, और कम कर लो। तो कम करने पर आप जोर देंगे तो सृजन नहीं हो सकता है।

मैं नहीं कहता हूं कि कुछ अमीर इस मुल्क की गरीबी के लिए जिम्मेवार हैं। मैं कहता हूं इस मुल्क के गरीब, इस मुल्क की पूरी जनता अपनी गरीबी के लिए जिम्मेवार है। उसे अपनी "फिलॉसफी ऑफ लाइफ" को बदलना पड़ेगा, अन्यथा वह कभी समृद्ध नहीं हो सकती।

समृद्धि का सूत्र हैः आवश्यकताओं को फैलाओ। क्यों? क्यों समृद्धि का सूत्र है कि आवश्यकताओं को फैलाओ? जितनी आवश्यकताएं फैलती हैं उतना हमें श्रम में रत होना पड़ता है। और बड़े मजे की बात यह है कि हमें पता ही नहीं कि हममें कितनी श्रम की क्षमता है। जब हम आवश्यकताओं को फैलाते हैं तभी हमें पता चलता है। समझ लें... !

मैं आपको दौड़ने को कहूं, ऐसे ही, कि जरा दौडें, और कहूं कि पूरी ताकत से दौड़ें, तो भी आप कितनी ही ताकत लगाएं वह पूरी ताकत नहीं होगी। फिर कल मैं एक और आदमी को आपके साथ दौड़ने को ले आऊं और कहूं कि दोनों में प्रतियोगिता है और यह गोल्ड मेडल रहा! अब जरा ताकत से दौड़ेंगे। आप पाएंगे कि कल जितना आप दौड़े थे, आज उससे ज्यादा दौड़ रहे हैं। हालांकि कल आप समझ रहे थे कि यह आपकी आखिरी ताकत है। आज आप ज्यादा दौड़ रहे हैं। यह ताकत कहां से आई? लेकिन यह भी आखिरी नहीं है।

परसों मैं एक पुलिसवाले को ले आऊं और आपके पीछे एक बंदूक लगवा दूं। और कहूं कि पूरी ताकत से दौड़ें, कहने की जरूरत ही नहीं रहेगी कि पूरी ताकत से दौंड़ें। तब आपको पहली दफा पता चलेगा कि आप हवा में उड़े जा रहे हैं। ऐसे तो आप कभी नहीं दौड़े। यह ताकत कहीं आसमान से आ रही है? यह ताकत आपके भीतर है। जितनी आप चुनौती देते हैं इस ताकत को उतनी यह उठती है।

वैज्ञानिकों का खयाल है कि अधिकतम श्रम करने वाले लोगों ने भी मस्तिष्क की पंद्रह प्रतिशत से ज्यादा शक्ति का उपयोग नहीं किया है। पंद्रह प्रतिशत, बड़े से बड़ा प्रतिभाशाली आदमी भी अपने मस्तिष्क की पंद्रह प्रतिशत शक्ति का उपयोग करता है। बाकी शक्ति जैसी जन्म के समय रहती है वैसी बेकार, मरने के समय खत्म हो जाती है। शरीर के साथ भी वही हाल है। हम अपनी शक्तियों का उपयोग नहीं कर पाते क्योंकि आवश्यकताएं तो कम करनी हैं। तो आवश्यकताएं कम करने के लिए कितनी शक्ति का उपयोग करना पड़ता है? जब एक आदमी को पैर ही सिकोड़ने हैं न चादर के भीतर? कितनी ताकत लगी है? लेकिन चादर बड़ी करनी हो तो तब ताकत लगनी शुरू हो जाती है।

आवश्यकताएं ज्यादा होती हैं तो व्यक्तित्व को चुनौती मिलती है। इस मुल्क के व्यक्तित्व को कोई चुनौती नहीं है। इसलिए यह मुल्क गरीब है। और चुनौती देने वाला भी कोई नहीं है। क्योंकि जो चुनौती दे, वह लगेगा कि यह आदमी हमें कैसे तर्क की भाषा बता रहा है? यह कहां हमको नरक ले जाएगा? क्योंकि आवश्यकताएं बढ़ गई तो आग्रह बढ़ जाएगा, आसक्ति बढ़ जाएगी। आसक्ति बढ़ जाएगी तो फिर बंधन बढ़ जाएगा। फिर जीवन के आवागमन से मुक्ति कैसे होगी?

तो आवागमन से मुक्त होना हो तो फिर गरीब रहना बहुत अच्छा है। यह मुल्क आवागमन से मुक्त होने की कोशिश कर रहा है, पांच हजार साल से। जिंदा रहने की कोशिश नहीं कर रहा है। मरने के बाद फिर से जिंदा न होना पड़े इसकी कोशिश में लगा है। होकर तो गरीब--नहीं तो क्या अमीर हो जाएंगे आप? जिंदा रहने की कोशिश से अमीरी पैदा होती है, समृद्धि पैदा होती है। जिंदा रहने का श्रम चुनौती मांगता है, चैलेंज मांगता है। चैलेंज कौन देगा? बैलगाड़ी में बैठे हैं तो बैलगाड़ी में बैठे हैं। तो कार कौन पैदा करेगा, चैलेंज कौन देगा?

कार में बैठे हैं तो कार में बैठे हैं। तो फिर हवाई जहाज कौन पैदा करेगा? चैलेंज कौन देगा? जिंदगी चुनौती से गति पाती है। सब तरह की गति, चाहे बुद्धि की हो, चाहे धन की हो, चाहे श्रम की हो, शक्ति की हो,

शरीर की हो, मन की हो, आत्मा की हो। समस्त गतियां चुनौती से पैदा होती हैं। और इस मुल्क ने चुनौती को इनकार कर दिया और हम कहते हैं, हम चुनौती मानते ही नहीं। तो फिर ठीक है, कौन जिम्मेवार है? किस की जिम्मेवारी है कि हम गरीब हैं? चुनौती चाहिए। आवश्यकताएं बढ़ती हैं तो उसके परिणाम गहरे शुरू होते हैं। सारा मुल्क कहता है कि बेकारी है। एक तरफ बेकारी है और मुल्क के साधु-संन्यासी, नेता समझा रहे हैं कि सादगी से रहो। बेकारी खत्म कैसे होगी? ज्यादा चीजें पैदा करों तो ज्यादा लोग श्रम में लगेंगे। ज्यादा जरूरतें हों तो ज्यादा लोग श्रम में लगेंगे।

आज अमरीका की आधी से अधिक इंडस्ट्री, पचास प्रतिशत उद्योग स्त्रियों के साज-श्रृंगार को पैदा करने में लगा है। गांधीजी समझाते हैं कि स्त्री को साज-शृंगार की जरूरत ही नही। उसको तो खादी के कपड़े पहन कर करीब-करीब पुरुष जैसा हो जाना चाहिए।

ठीक है, आप सब स्त्रियों को खादी पहना दें। लिपिस्टिक न लगाने दें, गहने न पहनने दें, बाल न सजाने दें, रंग-रोगन न लगाने दें। इंडस्ट्री का मतलब क्या होता है? स्त्रियां पचास प्रतिशत इंडस्ट्री चलाती हैं सारी दुनिया की, हिंदुस्तान को छोड़ कर। उसका कारण है। एक दफा पाउडर लगाओ फिर साबुन से धोओ, फिर पाउडर लगाओ, फिर साबुन से धोओ, तो पच्चीस इंडस्ट्री चल रही हैं उनके इस पाउडर लगाने से और साबुन से धोने से। वहां मजदूर को काम मिल रहा है।

जिंदगी को हम समझेंगे तो वह कुछ और है। अब अगर सब स्त्रियों को सादा बना दो तो आदमी बेकार हो जाएगा। अब वह आदमी बेकार हो जाएगा तो चिल्लाओ कि आदमी बेकार क्यों है। क्योंकि कुछ लोग शोषण कर रहे हैं। कोई शोषण नहीं कर रहा। आदमी बेकार इसलिए है कि आपके पास काम का विस्तार नहीं है। और काम का इतना विस्तार हो सकता है और वह तभी हो सकता है जब हमारी आवश्यकताएं रोज बढ़ती जाएं, दिन दूनी रात चौगुनी।

जब अमरीका के जीवन का ढंग है कि कोई आदमी इस फिकर में नहीं है कि कितना कम करे, हर आदमी इस फिकर में है कि कितना ज्यादा करे। तो स्वभावतः सब चीजें ज्यादा चाहिए। कार का माडल हर साल बदल जाएगा। क्योंकि पिछले साल का कार का मॉडल कौन रखे? आउट ऑफ डेट गाड़ी का रखना, आउट ऑफ डेट आदमी का सबूत है। लेकिन हमारे मुल्क में? हमारे मुल्क में उन्नीस सौ बीस में जो गाड़ी आई थी उसको हम सम्हाल कर रखे हुए है। और पड़ोसी हमारी तारीफ करते हैं, क्या गजब का आदमी है, उन्नीस सो बीस की गाड़ी अभी भी चला रहा है!

बड़े मजे से चलाइए उन्नीस सौ बीस की गाड़ी आप। यह मुल्क मर जाएगा। क्योंकि इस मुल्क का सारा का सारा उत्पादन इस बात पर निर्भर करता है कि लोग कितनी जल्दी चीजें बदलते हैं। जब हम दुकान पर जाते हैं तो हिंदुस्तान में आदमी पूछता है कि टिकाऊ है! कितनी देर चलेगी?

अमरीका में कोई आदमी नहीं पूछेगा। एक आदमी नहीं पूछता कि टिकाऊ है। अमरीका में एक नया शब्द है, वे टिकाऊ नहीं पूछते, वे ड्यूरेबिलिटी नहीं पूछते। वे पूछते हैं, एक्सचेंजेबिलिटी। यह बदली जा सकती है, कितने दिन में बदली जा सकती है? घड़ी लेने एक आदमी जाएगा तो कहेगा तीन महीने में बदली जा सकती है। वह पूछेगा कि एक्सचेंजेबिलिटी कितनी है इसकी। साल भर बाद बदलेंगे तो बदली जा सकती है? छह महीने बाद बदली जा सकती है। कोई नहीं पूछेगा कि ड्यूरेबिलिटी कितानी है? क्योंकि ड्यूरेबिलिटी का मतलब--क्या मरना है कि जीना है? अगर एक ही घड़ी से जिंदगी भर गुजार लिया तो घड़ी की इंडस्ट्री का क्या होगा?

मगर हमारे यहां ऐसे लोग हैं कि एक घड़ी उनके पिता ने बरती, उनके पीता ने भी बरती, वे भी बरत रहे हैं। बाबा आदम के जमाने में जो घड़ी रही होगी, वह उसे सम्हाले हुए हैं। बड़े सादे हैं, बड़े भोले हैं, इनके पैर पड़ो। ये मार डालेंगे पूरे मुल्क को।

जिंदगी के विस्तार के नियम हैं और जिंदगी की समृद्धि के नियम हैं। और हमारे सारे नियम उलटे हैं। मगर हम बहुत प्रसन्न होते हैं कि देखें, आदमी कितना सादा है। खाने में देखो तो घास-पात खा लेता है। नहीं, ऐसे नहीं, जीवन की समस्त विविधाओं में, जीवन के सब डाइमेन्शन में, रोज नए की खोज, रोज नए की आकांक्षा समृद्ध बनाती है।

पुराने पर पकड़े बैठे रह जाना, गरीब बनाती है। यह मुल्क इसलिए गरीब नहीं है। मेरी अपनी समझ यही है कि मुल्क इसलिए गरीब नहीं है कि पूंजीवादी है और इसलिए अमीर नहीं हो जाएगा कि समाजवादी हो जाऐ। इस मुल्क के सोचने के ढंग गरीब के ढंग हैं। और इस मुल्क के सब महात्मा इसको गरीब होना सिखाते हैं। सब महात्मा इसको जो बातें सिखाते हैं वह सब खतरनाक है। वह इस मुल्क की जड़ को काट डालते हैं। लेकिन वे महात्मा बड़े प्यारे हैं, क्योंकि पांच हजार साल से जो हम सुन रहे हैं वही हमें वे फिर सुनाते हैं। बार-बार सुनी गई बात ठीक मालूम पड़ने लगती है। इसलिए नहीं कि ठीक है। इसलिए कि बार-बार सुनी है। बार-बार सुनते-सुनते हम यह भूल ही जाते हैं कि यह बात झूठ होगी। एक झूठ को बोलते रहें सुबह से शाम तक, दूसरे लोग तो भरोसा करेंगे कि नहीं करेंगे! लेकिन सुबह से शाम तक बोलते-बोलते आप जरूर भरोसा कर लेंगे, खुद ही। क्योंकि शक होने लगेगा कि जो इतनी बार बोला है, यह झूठ हो सकता है! जिसको इतने लोगों ने विश्वास किया वह झूठ हो सकता है?

मनुष्य जाति के बड़े से बड़े दुर्भाग्य ऐसे झूठ हैं जो सच जैसे मालूम पड़ने लगे। और ध्यान रहे, जीवन का एक नियम है कि या तो फैला या सिकुड़ो, बीच में कोई जगह नहीं है।

अगर आप कहें कि हम बीच में खड़े रहेंगे, संतुलन साधेंगे। तब कुछ भी साध सकते आप। जिंदगी का नियम है, या तो फैलो या सिकुड़ो, या तो जीओ या मरो, या तो जीतो या हारो। जिंदगी बीच में नहीं खड़ी रहती कहीं भी। जिस दिन इस मुल्क ने यह तय कर लिया कि हमें फैलना नहीं है उसी दिन हम सिकुड़ने लगेंगे। जिस दिन हमारे आदमी ने यह तय कर लिया कि हमारी कोई बड़ी आकांक्षाएं नहीं हैं तो उसी दिन सिकुड़ गए, उसी दिन हमारे जीवन की ऊर्जा बैठ गई। उसको चुनौती मिलनी कठिन हो गई।

तो मैं आपसे कहना चाहता हूं कि हम गरीब हैं तो गरीबी के कारण को समझें। हमारी फिलॉसफी, हमारा चिंतन, हमारा धर्म, सब हमें गरीब होने का रास्ता बताता है। और अगर यह सब ठीक है तो फिर गरीब होने से हमें सहमत होना चाहिए।

मैं नहीं कहता कि आप अमीर हो जाएं। फिर मैं कहता हूं कि आप अपनी फिलासफी को समझ लें, फिर आप गरीब होने को राजी रहें। या फिलॉसफी बदलें, अगर गरीबी से नाराजगी है तो, और या फिर राजी रहें। दो के सिवाय और कोई विकल्प नहीं है।

लेकिन हम बड़े अजीब लोग हैं। हम अमीर होना चाहते हैं अमरीका जैसे और दर्शन पकड़ना चाहते हैं भारतीय। हम तो भारतीय हैं, हम भारतीय रहेंगे। भारतीय रहकर आप अमरीका जैसे समृद्ध नहीं हो सकते। आपको अपने भारतीय होने में बुनियादी फर्क करने पड़ेंगे। आपका भारतीय होना बिल्कुल ही समृद्धि के लिए बेमानी है, इररिलेवेंट है, असंगत है। इधर तो हम चिल्ला रहे हैं हम भारतीयकरण करेंगे। हम तो बिल्कुल भारतीय, शुद्ध भारतीय हैं, हंड्रेड परसेंट भारतीय का हमको नशा सवार है।

सौ प्रतिशत भारतीय रहना है तो सौ प्रतिशत गरीब रहना पड़ेगा। आधुनिक से डरे हुए हैं, पश्चिम से डरे हुए हैं कि कहीं ऐसा न हो जाए कि हमारे भारतीय होने में थोड़ी बहुत कमी पड़ जाए। असल में भारतीय होने का क्या मतलब होता है?

भारतीय होने का फिर यही मतलब होता है कि जो हमारी कथा है वही हमारी कथा रहेगी, उसमें हम कोई फर्क नहीं कर सकते। हमें फर्क करना पड़ेगा। हम वैसे ही भारतीय नहीं हो सकते अब, जैसे हम मनु के जमाने में थे। और न हम वैसे ही भारतीय हो सकते हैं जैसे हम पांच सौ साल पहले थे। असल में पिछले वर्ष के भारतीय भी आज नहीं हो सकते और अगर होंगे तो हम परेशानी में पड़े रहेंगे। और मजा यह है कि भारतीय होने के लिए क्या हमको पुराना ही होना पड़ेगा? क्या भारत का अभी भी भविष्य नहीं है? क्या भारतीय होने की, भविष्य की कोई रूप-रेखा नहीं हो सकती? लेकिन यह हमारे पुराने सिद्धांतों से तालमेल नहीं खाता। हमारे पुराने शास्त्र हमको दिक्कत में डाल देते हैं, वे कहते हैं कि तालमेल नहीं बैठता है।

तब फिर हम एक जिद्द में पड़ गए हैं। और इस जिद्द से बाहर निकलने का एक ही उपाय मुझे दिखाई पड़ता है कि हम उस जिद्द को ठीक तरह से समझ लें, इस झंझट को हम ठीक से समझ लें कि हमारी झंझट क्या है। या तो हमें गरीब रहना है तो गरीब होने को स्वीकार कर लें और गरीब रहें। और अगर गरीबी को मिटाना हो तो गरीबी के सूत्रों को आग लगा दें, और अमीरी के सूत्रों पर जीवन को ढालने की कोशिश करें। अन्यथा इन दोनों के बीच इतने तनाव में पड़ जाएंगे कि न तो हम जी सकेंगे और न हम मर सकेंगे, त्रिशंकु की हमारी हालत हो जाएगी, जो हो गई है।

एक और मित्र ने पूछा है, एक दो छोटे-छोटे सवाल। एक मित्र ने पूछा है कि यह जो पूंजीवाद आज मौजूद है, इसमें इतना भ्रष्टाचार है, इतनी घूसखोरी है, इतनी रिश्वत है, क्या आप इसके भी समर्थक हैं?

यह घूसखोरी, भ्रष्टाचार, रिश्वत पूंजीवाद के कारण नहीं है। इसके कारण बिल्कुल दूसरे हैं, उनका पूंजीवाद से कोई लेना-देना नहीं है।

जिस देश में इतनी गरीबी हो उस देश में सदाचार हो सकता है, यह चमत्कार होगा। यह संभव नहीं है। जहां जीना इतना कठिन हो, वहां आदमी ईमानदार रह सकेगा, यह मुश्किल है। हां, एकाध आदमी रह सकता है। कोई संकल्पवान रह सकता है, लेकिन इतना संकल्प सबके पास नहीं है और इसके लिए उन्हें दोषी भी नहीं ठहराया जा सकता।

जिंदगी में जहां जीने के लिए बेमानी शर्त बनाना पड़ता हो--यहां इतने बड़े कमरे में हम सारे लोग बैठे हैं और यहां बीस-पच्चीस रोटी हों और हम सब भूखे हों तो आप सोचते हैं, शिष्टाचार बचेगा? और वह शिष्टाचार, अगर नहीं बचा, तो क्या इस भवन को आप गाली देंगे कि यह भवन भ्रष्टाचार पैदा करवा रहा है? भ्रष्टाचार भवन पैदा नहीं करवा रहा है! भ्रष्टाचार! पच्चीस रोटियां और पच्चीस सौ खाने वाले भूखे हैं, इनकी वजह से भ्रष्टाचार पैदा हो रहा है। इस कमरे का कोई कसूर नहीं है, भवन का कोई कसूर नहीं, यह पूंजीवाद की व्यवस्था का कोई कसूर नहीं है कि भ्रष्टाचार है। भ्रष्टाचार का कारण दूसरा है। भ्रष्टाचार का कारण यह है कि भूख ज्यादा है, रोटी कम है। नंगे शरीर ज्यादा हैं, कपड़े कम हैं। आदमी ज्यादा हैं, मकान कम हैं। जीने की सुविधा कम है, और जीने वाले रोज बढ़ते चले जा रहे हैं। इसके बीच जो तनाव पैदा होगा, वह भ्रष्टाचार ले आएगा। इस

भ्रष्टाचार को कोई नेता नहीं मिटा सकता। क्योंकि नेतागण सोचते हैं कि जैसे भ्रष्टाचार को मिटाना... वह जिस ढंग से सोचते हैं, कोई साधु-सेवक-समाज बना लेता है कि इससे हम भ्रष्टाचार मिटा देंगे।

कुछ ऐसा लगता है कि हम जिंदगी के गणित को सीधा देखने से चूक ही जाते हैं। साधु-सेवक-समाज बनाने से क्या भ्रष्टाचार मिटा दोगे? ये साधु जाकर सारे मुल्क को समझायेंगे कि भ्रष्टाचार मत करो। तो क्या भ्रष्टाचार बंद हो जाएगा? यह समझाने का मामला है कि भ्रष्टाचार मत करो!

यह समझाने की बात होती तो हम करते ही न, यह समझाने की बात नहीं है। यह जीने का-- "एक्झिस्टेंशियल" प्रश्न है। यहां अस्तित्व खतरे में है। यह प्रवचन से हल होनेवाला नहीं है कि सारे हिंदुस्तान के साधु गांव-गांव जाकर समझाएं कि भ्रष्टाचार मत करो। तो बस भ्रष्टाचार बंद हो जाएगा। यहां कोई शिक्षा की कमी नहीं है और न प्रवचनों की कमी है। और यह न होगा कि बच्चों को गीता और रामायण कंठस्थ करवा दें तो भ्रष्टाचार मिट जाएगा कि नैतिक शिक्षा दे दें, हर स्कूल में। पढ़ लेंगे गीता को, रामायण को, भ्रष्टाचार नहीं मिट जाएगा। क्योंकि भ्रष्टाचार के होने के कारण अस्तित्व में छिपे हैं। यह कोई सिद्धांतों की बात नहीं है। और नेतागण चिल्लाते रहे हैं कि हम भ्रष्टाचार को मिटा देंगे, वे चाहे जो इंतजाम करे। वे जो भी इंतजाम करेंगे वही भ्रष्टाचारी हो जाएगा। और मजा तो यह है कि वह जो नेता जितने जोर से मंच पर चिल्लाते हैं कि भ्रष्टाचार मिटा देंगे, वे उस मंच तक बिना भ्रष्टाचार के पहुंच नहीं पाते। जहां से भ्रष्टाचार मिटाने का व्याख्यान देना पड़ता है, उस मंच तक पहुंचने के लिए भ्रष्टाचार की सीढ़ियां पार करनी पड़ती हैं।

अब यह इतना जाल है कि सिद्धांतों से होने वाला नहीं है। इस जाल की बुनियादी जड़ को पकड़ना पड़ेगा और अगर हम जड़ को पकड़ लें तो बहुत चीजें साफ हो जाएं। हमें मान लेना चाहिए कि आज के भारत में ईमानदारी की बात करना बेकार है। न नेता को करना चाहिए, न साधु को करना चाहिए। हमें मान लेना चाहिए कि बेईमानी नियम है। इसमें झंझट नहीं करनी चाहिए। इसमें झगड़ा खड़ा नहीं करना चाहिए। तब कम से कम बेईमानी सीधी साफ तो हो सकेगी। यानी मुझे आपकी जेब में हाथ डालना है तो मैं सीधा तो डाल सकूंगा। नाहक आप सोएं और रात में आपके घर मैं आऊं, जेब में हाथ डालूं और फिर सुबह मंदिर जाऊं और व्याख्यान करूं कि चोरी करना पाप है। यह सब जाल की जरूरत नहीं है। हिंदुस्तान में बेईमानी जो है आज की समाज-व्यवस्था में, अगर न हो, तो या तो समाज-व्यवस्था टूट जाए, या तो हम मर जाएं। बेईमानी इस वक्त लुब्रीकेटिंग का काम कर रही है। वह लुब्रीकेशन है। वह जरा पहिए को तेल दे देती है और चलने लायक बना देती है। अगर यह मुल्क कसम खा ले ईमानदार होने की, तो मर जाए। वह जिंदा नहीं रह सकता है और जिन लोगों ने कसम खा ली ईमानदारी की उनसे आप पूछ लो कि वे जिंदा हैं कि मर गए। उनकी आवाज शायद ही निकले, क्योंकि वे मर ही चुके होंगे।

भ्रष्टाचार हमारी इस समाज-व्यवस्था में, हमारी इस समाज की दीनता और दरिद्रता में, हमारे समाज की इस भुखमरी हालत में इस यंत्र-विहीन अनौद्योगिक संपत्ति शून्य समाज में अनिवार्यता है। इसमें चिल्लाने की कोई जरूरत नहीं है, न किसी को गाली देने की जरूरत है।

मैं जापान की छोटी सी किताब पढ़ रहा था शिष्टाचार के नियमों की। तो उसमें लिखा हुआ है कि किसी आदमी से उसकी तनख्वाह न पूछें। तब बहुत हैरान हुआ कि क्या मामला है। हमसे बड़े अविकसित मालूम होते हैं जापानी। हम तो तनख्वाह ही नहीं पूछते, यह भी पूछते हैं उससे कि कुछ ऊपर से भी मिलता है कि नहीं। यह बड़े पक्के गंवार मालूम पड़ते हैं। इनको इतना पता नहीं कि भारत जैसा सुसंस्कृत और सभ्य देश वहां आम तनख्वाह के ऊपर क्या मिलता है, यह भी पूछते हैं। न केवल पूछते हैं बल्कि बताने वाला बताता ही है कि कुछ

भी नहीं मिलता है, थोड़ा ही मिलता है, कुछ ज्यादा नहीं मिलता। उस किताब में नीचे नोट लिखा हुआ है कि किसी से तनख्वाह पूछना अपमानजनक हो सकता है, क्योंकि हो सकता है उसकी तनख्वाह कम हो और उसे चार आदमियों के सामने तनख्वाह बतानी पड़े, या हो सकता है कि उसे इतना संकोच लगे कि उसे व्यर्थ झूठ बोलना पड़े, जितनी उसकी तनख्वाह न हो उतनी बतानी पड़े, इसलिए तनख्वाह नहीं पूछनी चाहिए।

इस मुल्क में हमें आज की मौजूदा हालत में भ्रष्टाचार, रिश्वत इतनी बात नहीं पूछनी चाहिए। यह अशिष्टता है, घोर अशिष्टता है। यह सीधी साफ बात है, यह स्वीकृति होनी चाहिए। इसमें कोई झगड़ा नहीं करना चाहिए। हां, रह गई बात यह कि अगर हम इसे स्वीकार कर लें तो हम इसे मिटा सकते हैं। इसे हम स्वीकार कर लें तो इसकी बुनियादी जड़ों में जा सकते हैं कि बात क्या है। कोई आदमी अपनी तरफ से बुरा नहीं होना चाहता। बुराई सदा ही मजबूरी की हालत में पैदा होती है। हां, कुछ लोग होंगे जिनको बुरा होने में मजा आता है, वे रुग्ण हैं। उनकी चिकित्सा हो सकती है। लेकिन अधिकतम लोग बुरा होने के लिए बुरा नहीं होते। जब जीना मुश्किल हो जाता है तब बुराई को साधन की तरह पकड़ते हैं।

जब इतनी बुराई है तो इस बात की यह खबर है कि मुल्क इस जगह खड़ा है जहां असंभव हो गया है। इसलिए जीने को हम कैसे संभव बनाएं? कैसे सरल बनाएं? कैसे समृद्ध बनाएं? यह सोचना चाहिए। भ्रष्टाचार कैसे मिटाएं यह सोचिए ही मत। आप सोचिए कि जीवन को कैसे समृद्ध बनाएं। जीवन को कैसे सरल बनाएं। कैसे जीवन को गतिमान करें। जीवन कैसे रोज रोज समृद्धि के नए शिखरों पर पहुंचें, इसकी फिक्र करिए। भ्रष्टाचार वगैरह की व्यर्थ बकवास में मत पड़े रहिए।

सिर्फ इंडिकेटर्स हैं। जैसे एक आदमी को बुखार आ जाए, अब घर में नासमझ हों या घर में अगर भारतीय किस्म के लोग ज्यादा हों, तो ठंडा पानी डालना इलाज होना चाहिए। क्योंकि गर्म हो गया उसका शरीर, ठंडा कर दो पानी डाल कर। लेकिन बुखार बीमारी नहीं है। बुखार सिर्फ भीतर की बीमारी की सूचना है। तो इसलिए अगर शरीर गर्म हो गया हो किसी का तो ठंडा पानी मत डालना। ठंडा पानी डालने से बीमारी मिट जाएगी क्योंकि बीमार मिट जाएगा। बुखार इस बात की खबर है कि शरीर में कहीं स्ट्रगल पैदा हो गई है, शरीर में कहीं संघर्ष खड़ा हो गया है। संघर्ष की वजह से शरीर गर्म हो गया है। शरीर में कही कोई कांफ्लिक्ट खड़ी हो गई है, शरीर का सहयोग टूट गया है, शरीर पूंजीवाद न रह कर, समाजवादी हो गया है। कुछ गड़बड़ हो गई है। हार्मनी टूट गई है, क्लास-स्ट्रगल शुरू हो गई है, दो तरह के कीटाणु इकट्ठे हो गए हैं। उस लड़ाई की वजह से शरीर गर्म हो गया है। उस लड़ाई में गर्मी आ ही जाती है। इस गर्मी को ठंडा नहीं करना है। उन कीटाणुओं को मारना है भीतर जाकर कि वह लड़ाई खत्म हो तो शरीर अपने आप ठीक टैम्परेचर पर वापस लौट आए।

भ्रष्टाचारी, रिश्वतखोरी, चोरबाजारी, स्मगलिंग सब बुखार है। शरीर का तापमान बढ़ गया है, समाज का। लेकिन असली बीमारी कहां है? असली बीमारी नहीं है यह। लेकिन हमारे सब नेता और सब ज्ञानी उन्हीं को ठीक करने में लगे हैं। भारतीय जो ठहरे, शुद्ध--हंड्रेड परसेंट भारतीय। वे उसको ठीक कर रहे हैं, और कहते हैं बिल्कुल ठीक कर देंगे। लेकिन किसी को यह खयाल नहीं है कि भारत की यह बीमारी आज नहीं आ गई है। यह बीमारी भारत में बढ़ते-बढ़ते पांच हजार साल में अब पूरी तरह प्रकट हुई है। पांच हजार साल का भारत का इतिहास कहता है कि परीक्षा में पास होना हो तो हनुमानजी को रिश्वत खिला दो, एक नारियल चढ़ा दो। उनसे कहो कि पांच आने का नारियल चढ़ाएंगे, हमारे लड़के को पास करवा दो। अगर लड़के को पास करवा दिया तो पांच आने का नारियल चढ़ा देंगे। अब यह क्या है? रिश्वत नहीं है तो क्या है? आप समझते हैं, यह कौन सी चीज है?

भगवान से जाकर कह रहे हैं, मंदिर बनवा दूंगा, अगर एक बच्चा पैदा हो जाए। यह क्या है? हां, भगवान और देवताओं को देते-देते, विकास होते-होते आदमियों तक यह बात पहुंच गई, यह दूसरी बात है।

आफिसर से कहते हैं कि नारियल चढ़ा देंगे जरा कुछ काम करवा दें। हम पहले से ही इसी तरह काम कर लेते रहे। और जब हम भगवान तक से सस्ते में काम लेते रहे तो बेचारा आफिसर किस खेत की मूली है और जब भगवान तक नारियल से राजी होते हैं, तो आफिसर न हों तो गैर भारतीय हैं। तो उसको राजी होना चाहिए, अशिष्टता मालूम होगी।

भारतीय का चित्त रिश्वतखोर है। वह रिश्वत खिला रहा है। वह खुशामदी है। वह भगवान को, देवताओं की, राजाओं की खुशामद भी करता था और अब न देवता दिखाई पड़ते, न भगवान दिखाई पड़ते हैं और राजा ही दिखाई पड़ते हैं। ये बेचारे मिनिस्टर वगैरह दिखाई पड़ते हैं। अफसर दिखाई पड़ते हैं। वह उन्हीं की खुशामद कर रहा है। वह हाथ जोड़े इन्ही के दरवाजे पर बैठा हुआ है।

स्वभावतः गरीब मुल्क है, दीन मुल्क है। जिनके हाथ में थोड़ी ताकत है वह उनके आस-पास पूंछ हिलाने लगता है। और अब तो पूंछ हिलाने तक में बड़ी मुश्किल हो गई है और उतनी समझदारी रखनी पड़ती है, जैसे आमतौर से कुत्ते रखते हैं। आपने कभी कुत्ते को पूंछ हिलाते देखा। अगर अजनबी के सामने कुत्ता आएगा तो भौंकेगा भी और पूंछ भी हिलाएगा, दोनों काम करेगा--डबल रोल एक साथ। क्योंकि अभी पक्का नहीं है कि अजनबी जो है वह मित्रता का रुख लेगा या शत्रुता का रुख लेगा। अगर शत्रुता का रुख लेगा तो पूंछ हिलाना बंद कर देगा, भौंकने को बढ़ा देगा। अगर मित्रता का रुख लेगा तो भौंकना बंद कर देगा, पूंछ की ताकत बढ़ा देगा। अब तो नेताओं के बाबत कुछ पक्का नहीं है कि कौन नेता कब तक नेता रहेगा, किस क्षण सख्त हो जाएगा, भूतपूर्व हो जाएगा, कुछ पता नहीं है। इसलिए थोड़ा आदमी भौंकता भी है, पूंछ भी हिलाता है। अगर स्थिर हो जाए तो पूंछ जोर से हिला देंगे और अगर बाहर निकल गया तो फिर जोर से भौंक कर बता देंगे। अब तो कुछ निश्चित नहीं है। लेकिन यह भारतीय लक्षण है। यह हमारे कौमी लक्षण हैं। इन कौमी लक्षणों का जिम्मा पूंजीवाद पर नहीं है। यह पूंजीवाद से बहुत प्राचीन है और इन प्राचीन लक्षणों की जड़े बहुत गहरी हैं।

और सारे उपद्रव की जड़ हमारी दीनता, दरिद्रता, हमारी गरीबी है। उस गरीबी को मिटाने की दिशा में हम जो भी करें वही कदम भ्रष्टाचारी, रिश्वतखोरी, चोरबाजारी, सबको मिटाने वाले सिद्ध हो सकते हैं।

और बहुत से प्रश्न रह गए हैं। लेकिन मैं आशा करता हूँ कि मैंने जो बातें आपसे कहीं, उन बातों को अगर आप सोचेंगे तो जिन प्रश्नों के उत्तर मैं समय की कमी से नहीं दे पाया, वे उत्तर आपके खयाल में आ सकते हैं। अंतिम निवेदन कि मेरी बातों को मान लेने की कोई जरूरत नहीं है, क्योंकि मैं कोई नेता नहीं हूं। और आपसे मुझे कुछ लेना-देना नहीं। आपसे कुछ लेना-देना नहीं कि आप मेरी बातें मानें तो मुझे फायदा हो, और मेरी बातें न मानें तो मुझे कोई नुकसान हो!

मेरी बातों को मानने की इसलिए भी कोई जरूरत नहीं हैं कि मैं कोई महात्मा हूं, कोई साधु हूं, कोई संत हूं कि आपको अनुयायी बनाने की मेरी इच्छा है। मैंने आपसे जो निवेदन किया, वह विचार के लिए है। आप सोचें... !

इतनी कृपा काफी होगी कि आप सोचें... ! और अगर आपको कुछ ठीक दिखाई पड़े तो वह ठीक, वह आपकी जिंदगी में आपका अपना सत्य हो जाएगा। जो सत्य स्वयं के हो जाते हैं, वे सक्रिय हो जाते हैं। और सत्य थोड़ा सा भी सक्रिय हो जाए, तो उसके परिणाम दूरगामी हो जाते हैं। जैसे हम पत्थर को फेंक दें झील में, जरा सी जगह पर गिरता है, लेकिन उसके वर्तुल दूर-दूर झील के किनारों तक फैलने शुरू हो जाते हैं। तो इस आशा

पर मैंने ये बातें कहीं हैं कि आपमें से शायद कुछ लोग भी अगर सोचेंगे तो जो वर्तुल पैदा होंगे वे शायद देश के कोने-कोने तक फैल जाएं! और हो सकता है कि अतीत में हमने भूलें की हों--लेकिन अतीत की भूलों से क्या प्रयोजन? हम भविष्य में भूलें करने से बच जाएं तो भी काफी है।

मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, इससे अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे प्रभु को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।